कुँवर विजयमल

कुँवर विजयमल

डॉ. आभा पूर्वे

अंगिका संसद
सराय, भागलपुर

ISBN : ९७८.८१.९५७१७२.२.४

प्रथम संस्करण
२०२२

सर्वाधिकार ©
लेखिकाधीन

प्रकाशक
अंगिका संसद
सराय, भागलपुर
(बिहार)-८१२ ००२
E-mail : angikasansad@gmail.com

हरियाणा कार्यालय
वार्ड-३३, सेक्टर-२८
सरस्वती विहार, गुरूग्राम-१२२००२

आवरण-चित्र
www.pexels.com से साभार

मुद्रक
Das Printer
गोविंदपुरी, दिल्ली।

मूल्य
एक सौ पचास रूपये मात्र

Kuwanr Vijaymal
By Dr.Abha Purbey Rs.150/-

भाभी **प्रियंका प्रसाद** को
उतने ही प्रेम से समर्पित
जितने प्रेम से वह मुझे मानती हैं

—आभा

इस उपन्यास के लिए

बात बीस सौ दस ईसवी की है। अंगिका लोकगाथा पर हिन्दी में उपन्यास लिखे जा रहे थे। प्रेरक थे कथाकार रंजन। सच तो यही है कि मुझे उस आंदोलन से कहीं अधिक प्रेरणा सीधे-सीधे रंजन भैया से ही मिली, जिन्होंने मुझसे आकर कहा कि अंगिका लोकगाथा कुँअर विजयमल पर अगर एक उपन्यास आ जाए तो आंदोलन को और भी बल मिलेगा। मैंने हाँ कह दिया। लोकगाथा के लिए भागलपुर आकाशवाणी में कार्यरत सान्त्वना साह का सहारा लिया और उपन्यास-लेखन शुरू भी कर दिया। लेकिन दुर्भाग्य से सान्त्वना के असामयिक निधन के कारण मन ऐसा टूटा कि उपन्यास लेखन से ही जी उचट गया। इसी बीच डॉ. अमरेन्द्र ने मेरी सभी हिन्दी कहानियों को एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की योजना बनाई, जिसमें इन्होंने मेरे अधूरे उपन्यास कुँअर विजयमल को भी प्रकाशित किया। यह बात सन २०२१ ई. की है।

'डॉ. आभा पूर्वे का कथा-साहित्य' में संकलित कहानियों पर उतनी प्रशंसाएँ तो नहीं मिलीं, जितनी कि कुँअर विजयमल पर। प्रशंसा करनेवालों में भैया रंजन और कथाकार अनिरुद्ध प्रसाद विमल भी थे। इससे उपन्यास को पूरा कर लेने की मुझमें फिर से नई स्फूर्त्ति जगी और उपन्यास को लिखना भी शुरू कर दिया। फिर ऐसा हुआ कि कोरोना की महामारी आ गई। बड़े भाई डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी और कथाकार भाई शिव कुमार शिव का भी साथ छूट गया, जिनसे लगातार लेखन पर प्रशंसाएं मिलती रहती थीं। मन कुँअर विजयमल से जैसे फिर उचटने लगा था, लेकिन डॉ. अमरेन्द्र ने कहा—''संग्रह में उस उपन्यास

को रखूंगा, उसे जल्दी पूरा करो। हिन्दी में तुम्हारा यह इकलौता उपन्यास होगा और शिल्प की दृष्टि से अनोखा। उस शिल्प की प्रशंसाएं भी मैं सुन चुका हूँ।'' इस प्रशंसा और दबाव ने मुझसे इस उपन्यास को पूरा करवा लिया। कैसा बना, नहीं कह सकती, लेकिन अधूरा उपन्यास जो शायद अधूरा ही रह जाता, अब पूरा हो गया है—यही मेरे लिए बेहद खुशी की बात है। रंजन भैया को भी खुशी होगी कि मैंने उनको कुँअर विजयमल उपन्यास देने का जो वचन दिया था, भले ही बीस सौ बाइस के अंत में आकर पूरा हुआ, अब हिन्दी के पाठकों के बीच रख रही हूँ, इस निवेदन के साथ कि ठुकरा दो या स्वीकार करो!

—आभा पूर्वे

गाँधी जयंती
२ अक्टूबर २०२२

कुँवर विजयमल

''इस तरह बदहवास-सी क्यों दिख रही हो मान्यता? पसीने से ब्लाउज और साड़ी के आँचल भींगे हुए हैं। यह तो तुमने अपने बदन पर न जाने कौन-सा विदेशी इत्र डाल रखा है कि इस हाल में भी तुमसे लिपट जाने का मन करता है ।''

''अर्पिता, तुम्हें तो हर घड़ी मजाक ही सूझता है। मैं किसी हाल में रहूँ और तुम्हारा मन करता है मुझसे लिपट जाने का। तभी तो मैं कहती हूँ कि मत करो अपने माता-पिता के निर्णय का इंतजार और कह दो चित्रांश से अपने मन की बात तुम्हें भी छुट्टी मिल जाएगी और मुझे भी तुम्हारे क्रूर मजाक से।''

अरी मेरी प्यारी सहेली, तुम तो नाराज हो गयी। मैंने चिढ़ाने के लिए अगर कुछ कह ही दिया तो इसमें रणचण्डी बनने की क्या जरूरत थी।

चलो आओ बैठो, कुलर के समीप बैठ कर। मैं तुम्हारे लिए कुछ ठंडा लेकर आती हूँ। क्या लोगी? लस्सी या बीयर? सुना है आजकल तुमने बीयर कुछ ज्यादा ही लेना शुरू कर दिया है। विभांडक के साथ रहोगी तो यही सब होगा।''

मान्यता ने अर्पिता को कुछ तीखी नजरों से देखा और फिर मुस्कुराते हुए कहा, ''चलो आज तुम्हारे साथ ही बीयर लूँगी। लोगी तो?''

''और वह भी दिन में, इस भरी दोपहरी में?'' ''अर्पिता, बीयर

लेने का कोई समय होता है क्या? यह तो ठीक वैसी ही बात हुई जैसे तुम मुझसे कहो कि प्रेम सिर्फ रात की निःस्तब्धता में ही संभव है।'' और इतना कहकर मान्यता ने उसकी छाती पर अपना एक हल्का-सा चुम्बन रख दिया और कहा, ''बस देर मत करो अर्पिता दो घंटे बाद विभांडक अपनी जगह पर पहुँच जाएगा और मुझे इसके पहले ही वहाँ पहुँचना होगा और हाँ अगर बीयर का अभाव हो तो मैं ले आऊँ। शहर में दस-दस कदम की दूरी पर शराब की दुकानें हैं।''

''अरे नहीं रे तुम्हारे लिए तो मैं दो-तीन बोतलें बचा के रखती हूँ'' और अर्पिता कमरे से बाहर निकल कर अपने शयनकक्ष में पहुँच गयी थी फ्रिज खोलकर बीयर की एक बोतल निकाली थी। दो गिलास को लिया था और मान्यता के पास चली आयी थी। मान्यता ने ही बोतल के ढक्कन को खोला था टेबल के एक छोर से ढक्कन को सटाते हुए। दोनों ग्लास में बीयर भरा गया था और फिर चुस्कियों के साथ बातें बढ़ने लगी थीं।

''वैसे तुमने बताया नहीं कि तुम आ रही हो कहाँ से और दो घंटे के बाद फिर तुम्हें कहाँ जाना है?''

उसने अर्पिता की बातों का उत्तर देने से पहले एक बड़ा-सा घूँट गले के नीचे उतारा था और गिलास को टेबुल के नीचे रखते हुए कुछ-कुछ भारी आँखों से कहा था—

''क्या तुम भी मेरे साथ चलोगी? खानगीपट्टी नहीं जाने कह रही हूँ, जो मुझे इस तरह घूरने लगी हो। लेकिन वहाँ जाने के बाद तुम्हारा मन जरूर ऊबने लगेगा लेकिन तुम्हारी इस सहेली का नहीं ऊबता। जानती हो अर्पिता मैं जिन लोगों के साथ बैठकर अपने शोध-प्रबंध को पूरा कर रही हूँ, उनके साथ मुझे घंटों-घंटों बैठना पड़ता है वे लोग एक साथ गाते हैं और मैं उनके गायन को अपने इस टेप में रिकार्ड करती रहती हूँ।'' और उसने अपने बड़े बैग से एक छोटा-सा टेप रिकार्डर निकाल कर रख दिया था और फिर कहा था, ''यह देख रही हो न, इसमें कुँवर वियजमल की कथा रिकार्ड है। सुनना चाहोगी? छोड़ो, मैं ही कुछ

गाकर सुना देती हूँ।'' और इतना कहकर मान्यता ने गिलास में बचे हुए बीयर को गले के नीचे उतार लिया था और गाने लगी थी,

रम्मा अब सुनो आगे के बेयनमों रे ना।
रम्मा सलकी तो जानेले अगमवो रे ना।।
रम्मा बारह बरस जाने आगा पछवो रे ना।
रम्मा जानि कर सब करमलमों रे ना।।
रम्मा चलि अइली सैरो घाट पोखरवो रे ना।
रम्मा जहाँ रहले विजई कुँवरवो रे ना।।
रम्मा कुँवर लग आई के नउनियाँ रे ना।
रम्मा मधुरे से बोलेली बचनियाँ रे ना।।

गाते-गाते मान्यता हठात् ही रुक गयी थी और अर्पिता से कहा था, ''जानती हो सलखी कौन थी राजकुमारी तिलकी की सेविका थी। सेविका न कहकर उसे सहेली कहो, तो अच्छा रहेगा। तिलकी के मन की एक-एक बात जानती थी सलखी। सच पूछो तो अगर हम इस कहानी से सलखी को हटा दें तो कुँवर विजय मल का ढाँचा ही बिखर जायेगा। सलखी ही जो कहानी के टुकड़े-टुकड़े को जोड़ती है और फिर बनती है अंगिका की एक बहुत बड़ी लोकगाथा कुंवर वियजमल।'' और इसी कुँवर विजयमल को जानने समझने के लिए मुझे राजमहल के चरवाहों, बंजारों के बीच भटकना पड़ रहा है। एक-दो महीने से नहीं पूरे छह महीने बीत गये हैं। एक हिस्सा एक बंजारा जानता है तो दूसरा हिस्सा दूसरा बंजारा। पूरी गाथा तो किसी को मालूम ही नहीं है कैसा समय आ गया है अर्पिता तो लोग के बीच हमारी लोक संस्कृति ही खो गयी है।'' और इतना कहते-कहते उसने बीयर के खाली गिलास पर अपना सर टिका लिया था।

मैंने भी उसे टोका नहीं। मुझे मालूम है कि इस हाल में मान्यता किसी से बोलना पसंद नहीं करती है। बस अपने मन में ही कुछ गुनती रहती है और फिर अँगुलियों को इस तरह फिराती रहती है जैसे वह कुछ लिख रही हो, शून्य में कोई तस्वीर बना रही हो।

सोचा अब इसे कुछ देर के लिए इसी हाल में छोड़ दूँ। यही सोचकर मैं उठना ही चाह रही थी कि उसने अपने बायें हाथ से मुझे पकड़ लिया और उनींदी आँखों से कहा, ''अरे तू जा कहाँ रही है तुम्हारे गिलास का बीयर तो जस का तस पड़ा है। क्या नहीं लेने का मन है। कोई बात नहीं, मैं ही ले लेती हूँ। मुझे मालूम है कि सोने के वक्त ही तुम्हें एक बार इसकी जरूरत पड़ती है।'' और इतना कहते ही उसने मेरे हिस्से का बीयर भी अपने गले के नीचे धीरे-धीरे उतारती चली गयी थी। मेरे होठों पर एक हल्की-सी मुस्कुराहट फैल गयी, यह सोचकर कि पता नहीं अब यह जहाँ जायेगी, कौन-सा तमाशा खड़ा करेगी।

गिलास को खाली करते ही वह उठी और मेरे कंधे पर दायाँ हाथ रखती हुई बोली, ''तो चलो अर्पिता, मुझे ठीक समय पर अपनी जगह पर पहुँचना है।'' इतना कह उसने अपना बैग उठाया था कंधे पर रखा था और दरवाजे की ओर बढ़ गयी थी। उसने इसका इतना भी इंतजार नहीं किया था कि मैं उसके पीछे-पीछे नीचे तक जाऊँगी। मैं जब दरवाजे पर पहुँची तो बस सीढ़ियों से नीचे उतरती उसके सैंडिल की आवाजें ही आ रही थीं।

(२)

रात के दस बज रहे थे मेरी बेचैनी धीरे-धीरे और भी बढ़ गयी थी। इसका कारण यह था कि अभी तक मान्यता का कोई टेलीफोन नहीं आया था। यह एक रूटीन की तरह बन गया था कि वह जहाँ कहीं भी रहे, जिस हाल में भी रहे, एक बार वह सोने से पहले जरूर टेलीफोन पर मुझसे बात कर लिया करती। लेकिन आज उसका टेलीफोन नहीं आ रहा था। मन में कुछ शंका भी हो रही थी हालाँकि मैं यह जानती थी

कि मेरी सारी शंकाएं व्यर्थ हैं। मान्यता कहने के लिए लड़की है, वक्त पड़े तो किसी मर्द को भी वह सबक सिखा सकती है। एक बार नहीं मैंने दो-दो बार उसकी बहादुरी को देखा है। मैं कैसे भूल सकती हूँ जब वह मेरे साथ रिक्शे पर बैठी दीपप्रभा सिनेमा हॉल से घर लौट रही थी कि रास्ते पर उसने दो आवारा लड़कों को एक लड़की के साथ छेड़खानी करते देखा था। मैं कुछ अभी बोलती कि वह बिजली की गति से कूद गयी थी और अपने दोनों हाथों से दोनों लड़कों की गर्दन को पीछे से दबोच लिया था, और फिर उनके सिरों को आपस में ऐसा दे मारा था कि जैसे किसी बड़े पत्थर से कोई बड़ा पत्थर टकराया । उन दोनों आवारों की चीख उस सन्नाटे में दिल दहलाने वाली थी। मान्यता ने लड़की को सहारा दिया था वह काफी घबराई हुई थी उसने उसे रिक्शा पर बिठाते हुए मुझसे कहा था, ''तुम इसे इसके घर पर छोड़ आओ। मैं कोई दूसरा रिक्शा कर लूँगी या फिर पैदल ही घर निकल जाऊँगी।''

जो भीतर से इतनी मजबूत युवती हो उसके बारे में ऐसी वैसी शंका करना मुझे बिल्कुल गलत लगा लेकिन उसका टेलीफोन नहीं आना मेरी शंका को खत्म नहीं कर पा रहा था। अभी कुछ और सोचती कि तभी टेलीफोन की घंटी घनघनाई। मान्यता का ही टेलीफोन होगा, यह सोचकर मैंने झटसे रिसीवर उठा लिया और कहा 'मान्यता'?

और उधर से एक खिलखिलाहट के साथ उसकी आवाज आई ''अरे तुम अभी तक सोई नहीं?' क्या जीजाजी का इंतजार कर रही हो? तुम्हें मालूम भी है कि रात के ग्यारह बज रहे हैं। तो मेरी प्यारी सखी, यह मान लो कि आज तुम्हें तुम्हारे प्रियतम की गलबाहें नसीब नहीं होने वाली हैं। इसीलिए न मैंने उनसे उस दिन कहा था—''परदेस की नौकरी छोड़कर कहीं घर के आस-पास की नौकरी ढूँढ लीजिए। यह रोज-रोज रात को घर लौटना ठीक नहीं। लगता है या तो जीजाजी की गाड़ी छूट गयी या फिर उनके आफिसर ने कहा होगा कि घर के बिना भी जीने की आदत डालो मिस्टर और शरमा कर आज जीजाजी परदेस से चले ही नहीं।'' इतना कह वह फिर जोर से खिलखिलायी थी।

पता नहीं वह और भी कुछ बोलती कि इसके पहले ही मैंने उससे कहा, ''मान लिया कि तुम्हारे जीजाजी की गाड़ी छूट गयी हो या फिर अफसर ने कुछ कह ही दिया होगा, लेकिन तुम्हें क्या हुआ कि अभी तक तुमने मुझे टेलीफोन करने की कुछ जरूरत नहीं समझी। तुम तो जानती हो कि रात में मुझे अपने पति के आने की खबर मिले या न मिले कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन तुम्हारे टेलीफोन नहीं आये तो मैं बेचैन हो जाती हूँ।''

''लगता है पूर्व जन्म में मैं ही तुम्हारा पति थी।'' और इतना कह कर मान्यता फिर खिलखिलाई थी और कुछ क्षणों तक खिलखिलाती ही रही थी। ''रुकी तो कहा चलो बहुत रात हो गयी तुम्हें नींद आ रही होगी सो जाओ।''

''मुझे तबतक नींद नहीं आएगी मेरे पूर्व जन्म के पति, जब तक तुम यह नहीं बता देती कि तुमने आज का दिन कहाँ गुजारा? किसके साथ गुजारा? कब घर लौटी? और आज तुम्हें हासिल क्या हुआ?''

मेरी बातों को सुनकर मान्यता इस बार खिलखिलाई नहीं थी, बल्कि अचानक ही वह गंभीर हो गयी थी। एक क्षण कुछ सोचा था और फिर कहने लगी थी, ''सुनो, आज मेरी मुलाकात उस व्यक्ति से हो गयी, जिसके बारे में तुम कुछ न कुछ बताती ही रही हो। तुम समझ गयी होगी कि वह व्यक्ति कौन हैं? वही जो तुम्हारी भाभी, तुम्हारी माँ और फिर तुम्हारे भी गुरु रहे हैं, यानि कि डॉ. अमरेन्द्र, लेकिन वह आदमी मुझे विचित्र लगे। विचित्र इस मायने में कि वह मर्द की शक्ल में औरत ज्यादा हैं। मैं जब खलीफाबाग चौक की एक दुकान पर खड़ी सौफ्टी ले रही थी, तभी वह अपने एक मित्र के साथ वहीं पर पहुँचे थे। जब उनके मित्र ने उनका नाम लेकर पुकारा तो मैं चौंकी, और बिना किसी हिचक के उनसे पूछ बैठी, ''क्या आप लेखक डॉ. अमरेन्द्र हैं?'' और मेरे प्रश्न पर उन्होंने स्वीकृति में अपना सिर हिलाया था, फिर तो मैंने बड़ी उत्सुकता के साथ कहा था—''मुझे एकांत में बातें करनी है, क्या अभी आप मुझे समय दे सकते हैं? या फिर आप अपने घर का पता बताएँ,

मैं आपके घर पर आकर मिल लूँगी अगर आपको आपत्ति नहीं हो। और जानती हो अर्पिता, मेरी ये बातें सुनकर तुम्हारे गुरु इस तरह घबराये, जैसे उन्होंने मेरे साथ छेड़खानी की हो, और मैं चिल्लाने वाली हूँ। घबराहट में बस तुम्हारे गुरु ने बस इतना ही कहा, 'क्या हम इस चित्रशाला में बैठकर बातें नहीं कर सकते, या फिर थोड़ी ही दूर पर चौधरी जी की दुकान है, लकड़ी की दुकान वहीं पर बैठकर बात कर लेंगे' जानती हो अर्पिता ऐसा मैंने कहीं पुरुष नहीं देखा। जो भी हो तुम्हारा गुरु हैं बहुत ज्ञानी, यह तो मैंने पाँच मिनटों की मुलाकात में ही जान लिया। उस आदमी से मुझे ढेर सारी जानकारियाँ मिल सकती हैं, यह भी मैंने जान लिया है। लेकिन यह सब कैसे संभव हो सकेगा बस इसी का जुगाड़ निकालना होगा। अच्छा तो रास्ता यही है कि तुम ही अपने घर पर उन्हें बुला लो और फिर वहीं सारी बातें होंगी। तुम्हारा मकान भी इसके अनुकूल ही है। क्या तुम मेरा साथ दोगी।''

''अरे इसमें पूछने की क्या बात है। कहो तो कल ही उन्हें बुला लूँ। किसी भी समय वो आ जाएँगे''

''नहीं, नहीं, कल नहीं। कल मुझे एक गायक से मिलना है । मैंने सुना है वह पूरी लोकगाथा को गाता है। नाथनगर का रहने वाला है। अपना नाम कोई साव बताया। योगेश यादव जी ने उससे मिलवाया था। देखने से तो यही लगा कि उसकी आर्थिक स्थिति बेहद खराब होगी, एक मैला-सा पाजामा और बदन पर वैसी ही मैली गंजी। लेकिन चेहरे पर कोई हीनता का भाव नहीं। मैं तो उससे काफी प्रभावित हूँ। कल उससे ही मिलूँगी। तुम अपने गुरु को परसों के लिए बुक कर लो और सुनो दिन के दस बजे से लेकर रात के आठ बजे तक।

''ठीक है''।

''बात पक्की।''

''एकदम पक्की।''

''तो तुम्हारी सखी मान्यता अब नींद में चली।'' और उसने एक अंगड़ाई ली थी फिर रिसीवर को नीचे रख दिया था।

(३)

मान्यता ने केशो साव के लिए सोफे का इंतजाम किया था ताकि उस पर बैठकर वह आराम से गा सके। लेकिन केशो साव ने साफ इंकार कर दिया, यह कहते हुए कि ''ना, ना मालकिन, मैं इस गद्दी वाली कुर्सी पर नहीं बैठूँगा। इस पर आप बैठिए। मैं तो जमीन पर बैठकर गाऊँगा'', और इतना कहते हुए वह जमीन पर बैठ गया था और उसके चाहने के मुताबिक ही मान्यता सोफे से सट गयी थी।

केशो साव ने गले को एक दो बार साफ किया था, लेकिन उसकी झिझक मिट नहीं पा रही थी। वह समझ नहीं पा रहा था कि इस युवती के सामने, जिसे वह ठीक से जानता पहचानता भी नहीं, कैसे गा सकेगा। लेकिन दूसरी ओर हजार रूपये मिलने की भी उम्मीद थी, इसलिए उसने अपने कंठ को खोला, ''तो सुनिए मान्यता दी, बहुत बड़ा राज्य था, कोई बोलता है वह दस कोस में फैला था और कोई कहता है वह सौ कोस में फैला था। कुछ भी हो, था वह बहुत बड़ा राज्य और उस राज्य का राजा था घुरमल सिंह, जैसा स्वभाव से धनी वैसा ही संपत्ति से भी। लेकिन राजा को कोई संतान नहीं थी इसलिए वह बड़े दुखी रहते थे। लेकिन कहते हैं कि दुनिया में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं होता जिसके जीवन में एक बार सुख दस्तक नहीं देता। राजा घुरमल की रानी मैनावती का शोक उस दिन खत्म हो गया जब उसने जाना कि उसकी कोख में राजा का अंश उतरा है। खुशी के मारे राजा पागल होने लगा। इतनी बड़ी खुशी की बात थी तो घर के लोग कैसे नहीं जानते और घर के लोग जब जान ही गये तो नगर के लोग कैसे नहीं जानते। दिन गुजरने लगे महीना पर महीना गुजरा फिर नौ मास भी पूरे हुए और रानी मैनावती की गोद में नवजात शिशु किलकारी भरने लगा था। रानी ने नौकर-चाकरों के बीच अपने आभूषण तक लुटा दिये, तो राजा कैसे पीछे रहते। बहुत दानी थे राजा घुरमल। जिसने जो माँगा वही दिया राजा ने। दीदी कथा कहने वाले तो यह भी कहते हैं कि आधा राज्य ही

अपनी प्रजाओं के बीच बाँट दिया।

रम्मा धरी लेलकै योगिया के भेष राजां ना
रम्मा लोर ढरै सोनामंती आँखी से रे ना
रम्मा तहियो नै कटियो टा घामलै राजा ना
रम्मा छोड़ी देलकै राजपाट सब्भे कुछ रे ना।

केशो साव को अब गाने में मन लग गया था उसका संकोच भी कम हो चला था, इसी कारण गाते वक्त वह अपने हाथों को ऊपर नीचे भी करता और कभी दायें हाथ को अपनी दायीं जंघा पर जोर से पटकता था। उसने मान्यता की ओर एक बार गौर से निहारा था और फिर कहना शुरू किया था, ''लेकिन दीदी, कहते हैं न कि आखिर में वही होता है जो ईश्वर चाहता है। आदमी के करने धरने से कुछ नहीं होता। मैनावती का राजकुमार ज्यों-ज्यों बड़ा होता चला जा रहा था, त्यों-त्यों राजा के मन में राज्य और परिवार के प्रति विराग होता चला गया। इधर राजकुमार छवारिक बना उसकी शादी आगपुर की राजकुमारी सोनामंती से हुई, उधर राजा ने मैनावती से अपने मन की बात कही, ''रानी अब ईश्वर से जो कुछ भी मुझे मिलना था वह सब मुझे मिल गया। पुत्र मिला और सौभाग्यवती पुत्रवधू मिली। जितना राज्य अपने बेटे के जन्म पर मैंने उपहार स्वरूप अपनी प्रजाओं को दिया था उससे अधिक बड़ा राज्य तो दहेज में समधी जी ने दे दिया है। राजकुमार सभी तरह से योग्य है इस राजकाज को संभालने में, इसी से मुझे अब वानप्रस्थ ग्रहण कर लेना चाहिए। अब इतना सुनना था तो रानी मैनावती ने कहा— मैं भी आपके साथ वन चलूँगी। लेकिन राजा ने तो यह पहले ही निश्चय कर लिया था कि वह अकेले ही वन में वास करेंगे ताकि स्त्री की रक्षा की चिंता से मुक्त होकर वह ठीक से ईश्वर साधना कर सकें। इसी से राजा घुरमल जी ने मैनावती को खूब समझाया-बुझाया और फिर अकेले ही जंगल की ओर निकल गये। सब राजपाट पीछे छूट गया, रानी मैनावती पीछे छूट गयी, राजकुमार हिरमल पीछे छूट गया और पुत्रवधू सोनामंती भी पीछे छूट गयी। राजा को प्रजा का मोह भी

नहीं बाँध सका। एकदम विरागी और निष्ठुर होकर राजा ने राज्य को त्याग दिया।'' कहते-कहते केशो साव हठात् ही चुप हो गया था कुछ शून्य में देखने की कोशिश की थी और फिर जैसे उसने कुछ देखा हो, जिसे ही देखकर उसके कंठ खुल पड़े थे।

और गीत खत्म क्या हुआ था, कि केशो साव उठ खड़ा हुआ। अपने दोनों हाथों से कमर के नीचे वस्त्र को झाड़ कर जाने को उद्धत हो उठा।

''क्या हुआ? आप जाने क्यों लगे?'

''नहीं दीदी, मैं अब रुक नहीं सकता। एक तो यहाँ गाने का मन नहीं कर रहा है, दूसरे अब घर भी पहुँचना जरूरी है। बाजार से सारा सामान मुझे ही लाना होता है न।'' ''यह बात तो ठीक है, लेकिन आपने यह क्यों कहा कि यहाँ गाने का मन नहीं करता?''

''हाँ दीदी, मैं सच ही कह रहा हूँ। मैं गीत गा रहा था और आप चुपचाप बैठी हुई थीं, 'हाँ हूँ' कुछ भी नहीं। ऐसे में कौन आपको गीत सुनायेगा।''

''अरे नहीं, नहीं मैंने तो यही सोचा था कि बीच में कुछ बोलूँगी तो आपका ध्यान भंग होगा फिर मुझे इसका भी तो ज्ञान नहीं था कि कोई कुछ सुनाये तो बीच-बीच में 'हाँ, हूँ' कुछ बोलते रहना चाहिए।''

''ठीक है, अब से मैं बोलूँगी।''

''लेकिन अब तो मैं रूक नहीं सकता।' एक बार मन उचट गया तो उचट गया। फिर कहा ना दीदी मुझे घर जाना है। बाजार का सामान भी लाना है, ऐसे में यहाँ मैं कैसे रूक सकता हूँ?''

''कोई बात नहीं। यह तो बताते जाइए कि अब आप कब मिलेंगे?''

''अगले हफ्ते आऊँगा दीदी।'' खेती-बाड़ी भी देखनी होती है। गीत गाने से पेट भर सकता है न घर चल सकता है।'' था कभी जमींदारी का युग, तो महाशय जी ड्योढ़ी पर गाने के लिए बुला लेते थे। पंद्रह-पंद्रह दिनों तक हम मंडली के साथ गाते रहते। इतना पैसा मिल

जाता कि महीने दो महीने के लिए निश्चिंत। अब तो युग जमाना ही बदल गया।''

मान्यता ने देखा केशो साव की आँखों में एक अजीब तरह की उदासी फैल गयी थी और इसके पहले कि वह बाहर की ओर निकल पड़ता उसने केशो साव के दायें हाथ को पकड़ा था और हथेली में उस लिफाफे को थमा दिया था जिसे एक क्षण पहले ही उसने बैग से बाहर निकाला था और कहा था, ''आपने मुझे दीदी कहा है इसी से मेरी किसी इच्छा को ठुकराना मत। लिफाफे में कुछ रूपये रख दिये हैं इसे पारिश्रमिक मत समझना, बस दीदी का स्नेह समझ कर रख लो। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी।''

केशो साव ने उसे लौटाने से इंकार नहीं किया था बल्कि उसे कमीज की निचली वाली दायीं जेब में रखकर उसे हथेली से पकड़ लिया था और फिर विनम्रता के साथ सिर को झुकाते हुए बाहर निकल गया था।

मान्यता के मन में एक ऐसा संतोष फैला हुआ था जिसका अनुभव उसने शायद पहली बार किया था।''

(४)

''क्या मान्यता, तुम्हारा वह गायक आया था क्या?'

''आया भी था और गीत सुनाया भी था। कितना मधुर कंठ है उसका। मैंने देखा, जब वह गा रहा था तब उसकी दोनों आँखें बंद थीं, जैसे वह गा भी रहा था और आँखों से कहानी की घटनाओं को भी देख रहा था।''

''चलो अच्छा हुआ। मैंने तुम्हारे कथनानुसार डॉ. अमरेन्द्र को

बुला लिया है। ठीक बारह बजे दिन में उपस्थित हो जाएँगे। तुम अब यहीं रुको। कहीं जाने की जरूरत नहीं दिन के ग्यारह बज रहे हैं, बस एक ही घंटे की तो बात है। हो सकता है कि बारह के पहले ही आ जाएँ।''

और ठीक यही हुआ भी दरवाजे पर हल्की दस्तक हुई।

''अर्पिता, कहीं डॉ. अमरेन्द्र ही तो नहीं?''

''लगता तो यही है। ठहरो मैं अभी देखती हूँ।''

दरवाजा खुला तो सामने सचमुच में वही थे। मुस्कुराते हुए पूछा, ''क्या तुम्हारी सहेली आ गयी?''

''हाँ, वह तो दो घंटे पहले से ही आपकी प्रतीक्षा कर रही है।''

''चलो, मैंने पहली बार जाना कि मेरे लिए कोई प्रतीक्षा भी कर सकती है।' और यह कहते हुए सीधे वह उस कमरे में प्रवेश कर गये, जो था शयनकक्ष, लेकिन पढ़ाई-लिखाई से लेकर बहस-गोष्ठी तक उसी कमरे में होती थी। मान्यता ने उठकर नमस्कार किया था और डॉ. अमरेन्द्र ने मुस्कुराहट के साथ उसका अभिवादन। फिर दो हाथ की दूरी बनाकर वह एक अलग कुर्सी पर बैठ गये थे और कहा था, ''कहिए मैं आपकी क्या मदद कर सकता हूँ? वैसे मैं आपका संक्षिप्त परिचय भी जानना चाहूँगा।''

इतना कहकर उन्होंने मेरी ओर देखा था, लेकिन मैंने कहा था, ''मान्यता का परिचय मान्यता ही देगी, अर्पिता नहीं।'' और मैंने मान्यता की ओर देखा था

''हाँ क्यों नहीं,'' मैं अपना परिचय स्वयं दूँगी।'' उसने डॉ. अमरेन्द्र की ओर देखा था और कहना शुरू किया था, ''मैं बिहार की नहीं हूं, मेरा घर केरल के एक गाँव में है। लेकिन पढ़ाई-लिखाई के क्रम में मुझे वर्षों यहाँ रहना पड़ा। भागलपुर से दक्षिण में एक गाँव हैं—बौंसी। वहीं के एक विद्यापीठ में मेरा पढ़ना-लिखना हुआ। यहाँ की संस्कृति से परिचय हुआ और फिर ऐसा लगाव हो गया कि मैं निश्चय ही कर बैठी—एम.ए. करने के बाद मेरी पी.एच.डी. का शोध विषय होगा—अंगिका

की लोकगाथा काव्य बाद में मुझे पता चला कि इस भाषा की लोकगाथाएँ तो चालीस से भी ऊपर हैं, कुछ छोटी, कुछ बड़ी। तब मेरा निर्णय बदल गया था, और अब मेरे शोध का विषय है 'विजयमल की ऐतिहासिकता में कल्पना के तत्व।' मुझे अपनी सहेली अर्पिता से ही पता चला है कि आप अंगिका भाषा के लेखक ही नहीं, बल्कि इस भाषा की लोकगाथाओं के संबंध में भी आपकी जानकारियाँ बहुत महत्वपूर्ण हैं। मुझे इसकी जानकारी अर्पिता से दो महीने पूर्व मिली थी। इसकी भी जानकारी मिली थी कि आप यहाँ प्रायः आते हैं। लेकिन मेरा दुर्भाग्य कि आपसे मेरी कभी मुलाकात नहीं हुई, और मुलाकात भी हुई तो खलीफाबाग चौक पर। मैंने ही आपको टोका था, लेकिन आप तो इस तरह मुझसे कट रहे थे, जैसे मैं कोई असामाजिक बर्ताव में संलग्न होऊँ।''

''अब उन बातों को छोड़कर हमलोग मुद्दे पर आएँ, तो ठीक होगा।''

''वह तो ठीक है लेकिन मैं इस बात को कभी भूल न सकूँगी कि एक अपरिचित युवती का एक अपरिचित युवक से पहली मुलाकात इतनी भी रसविहीन हो सकती है।'' मान्यता ने ये बात अपने होठों पर एक हल्की हँसी बिखेरते हुई कही थी। तो मुझे भी हँसी आ गयी थी। फिर कहा था, ''तुम्हारे साथ तो कुछ भी नहीं किया, इन्होंने तब मैं आइ. ए. की छात्रा थी और ये शिक्षक महोदय मेरी भाभी और मेरी माँ को पढ़ाने आया करते थे।

''पढ़ाने के अंदाज से मैं इतनी प्रभावित हुई कि एक दिन मैं अपनी हिन्दी वाली पुस्तक लेकर इनके पास पहुँच गयी—कहा महादेवी वर्मा की एक कविता है, इसे ठीक-ठीक समझा दीजिए। लेकिन जानती हो मान्यताँपढ़ाने की बात तो दूर, इन्होंने 'हाँ-हूँ' तक नहीं कहा। आज तक उसे उपेक्षा को मैं भूल नहीं पायी । यह तो समझो मेरी शादी हो गयी, वरना आँख उठाकर भी मुझे नहीं देखते।'' और इतना कहकर मैं भी खिलखिला पड़ी थी।

''अब आप दोनों हँसती ही रहेंगी या कुछ प्रश्न भी होगा?''

''हाँ, हाँ कुछ जानने के ख्याल से ही तो मैंने आपको बुलवाया है। वैसे आपसे मिलने को इच्छा पता नहीं क्यों बेहद बढ़ गयी थी। शायद इस अर्पिता के कारण। तो, महाशय पहले मैं यह जानना चाहती हूँ विजयमल की जाति क्या थी? मैं ऐसा इसलिए पूछ रही हूँ कि कुछ लोगों ने उनके संबंध में अलग-अलग बातें बताईं। एक ने कहा क्षत्रिय था, तो दूसरे ने कहा पहाड़िया जाति का था, तो तीसरे ने उसे जनजाति का बता दिया। क्या इस संबंध में आप मुझे कुछ जानकारी दे सकते हैं?''

लेकिन उत्तर देने के पहले आपने कुछ लिया नहीं। मेरा मतलब है कि फ्रेश होने के लिए कुछ तो चाहिए ही ठंडा-गरम या फिर.....?''

''धन्यवाद, आप सामने में हैं, वातावरण यूँ ही काफी ठंडा है। अब किसी और चीज की जरूरत ही नहीं। अब अगर प्रश्नों से ही माहौल गरमायेगा, तो फिर देखा जाएगा। तो आपने कुँवर विजयमल की जाति के बारे में पूछा। देखिये जिसने विजयमल को क्षत्रिय बताया है, वह बिल्कुल सही है। लेकिन हम क्षत्रिय से जो समझते हैं, विजयमल उस वर्ग में नहीं आता । उसका संबंध दुसाध क्षत्रिय से था। मुझे यही ज्यादा ऐतिहासिक लगता है दुसाधों की एक उपाधि मल्ल भी रही थी, और एक समय था कि यह दुसाध क्षत्रिय राजमहल से लेकर मुंगेर के आखिरी छोर तक प्रमुखता से फैले हुए थे । मुंगेर के जमुई क्षेत्र में दुसाधों का बहुत बड़ा राजवंश ही था। उसी क्षेत्र में मल्लेपुर का होना एक विशेष इतिहास की ओर संकेत करता है। मल्लेपुर यानि मल्ल राजवंशों का नगर या साम्राज्य। इतिहास में भी इसका प्रमाण आपको मिल जाएगा। दुसाध क्षत्रिय ही थे, इस बात को समझने के लिए आप चन्द्र प्रकाश जगप्रिय की पुस्तक 'गहलौत क्षत्रिय दुसाध' का भी अध्ययन कर ले सकती हैं। इतिहास की इस छोटी-सी पुस्तक में इतिहासकार ने दुसाधों को क्षत्रिय ही कहा है। और वह भी पूरे प्रमाण के साथ इस जाति के रीति-रिवाजों और बहादुरी का वहाँ रोचक वर्णन है। मैंने उस पुस्तक को पढ़ा है। मैं नहीं कह सकता कि ये दुसाध क्षत्रिय राजस्थान

से आये थे, अथवा इस महाअंगजनपद की ही संतान हैं। अगर बाहर से आये होते तो अंगप्रदेश में इस जाति का इतना व्यापक फैलाव शायद नहीं होता। तो, आपको जिसने यह बताया कि कुँवर विजयमल क्षत्रिय था, उसने ठीक ही बताया। मुझे तो सिर्फ इतना कहना है कि वह मल्ल क्षत्रिय था। किसी दुसाध राजवंश से संबंध रखने वाला। वैसे मल्ल उपाधि अन्य राजपूत जाति में भी मिल जाती है लेकिन प्रमुखता से नहीं। और अगर ऐसा है तो उसके पीछे कोई सामाजिक या राजनीतिक कारण रहा होगा।''

इतना कह डॉ. साहब चुप हो गये और मान्यता की आँखों में एक अजीब किस्म का उल्लास और संतोष छलक पड़ा था, और उसी मुग्धावस्था में उसने कहा—''आप ठीक कह रहे हैं डॉ. साहब । मैं भी यही सोच रही थी कि विजयमल कम से कम राजपूत वंश का तो नहीं ही था, क्योंकि मल्ल की उपाधि राजपूतों में अपवाद के रूप में ही प्राप्त होता है, जबकि कुँवर विजयमल में जो पात्र मिलते हैं, उनके साथ मल्ल उपाधि अवश्य जुड़ी हुई है, जैसे घुनघुनिया के राज घुरमल उसके बड़े पुत्र का नाम हिरमल और उसके छोटे पुत्र का नाम विजयमल हो सकता है दुसाध वंश से क्षत्रिय में अन्य उपाधियाँ भी हों, लेकिन मल्ल श्रेष्ठ वर्ग को संबोधित करती हुई उपाधि प्रतीत होती है।''

''आपका अनुमान गलत नहीं लगता।''

''वैसे डॉ. साहेब, आपको क्या लगता है कि घुरमल का राज्य कहाँ होगा। कोई कहता है राजमहल की पहाड़ियों पर उनका महल था, तो कोई कहता है मुंगेर की पहाड़ियों पर राजा घुरमल बसते थे, और कोई कहता है कि घुरमल भागलपुर के गनगनिया राज्य के राजा थे। सौ कोसों में फैला हुआ। आपको क्या लगता है।''

''राज्य कहाँ था, इस संबंध में निश्चित रूप से कहना मुश्किल है। लेकिन एक प्रश्न जो मुझसे प्रायः पूछा जाता है कि अगर घुरमल का सौ कोस में फैला हुआ राज्य था, तो उसका कोई राजमहल भी रहा होगा और अगर कोई राजमहल था, तो उसका कोई अवशेष क्यों नहीं दिखता।

तो इसका उत्तर यही हो सकता है कि घुरमल उस क्षेत्र का शासक था, जो किसी भी बाहरी आक्रमण के खतरे से मुक्त था। अंगप्रदेश अनेक नदियों, महानदियों, पर्वतों, जंगलों के बीच पड़ता है, इसीलिए यहाँ किलानुमा राजमहल बनाने की जरूरत ही नहीं थी। मिट्टी-चूना, लकड़ियों, स्लेटों से बना कोई महल होगा, जो प्रकृति के उत्पात और समय के प्रवाह में अपनी पहचान खो गया है। एक बात और, कि उस महल के आसपास पोखर या झीलनुमा तालाब ही अधिक होंगे, जिसे घुरमल ने बनवाया होगा। ऐसे प्रकृति प्रेमी को राजमहल की जरूरत ही क्या थी। आपको भी पता होगा कि मुंगेर में जरासंध का किला था, लेकिन उस किले का कोई अवशेष नहीं मिलता।''

''लेकिन मुंगेर में जो किला मिलता है, उसके संबंध में तो यही कहा जाता है कि वह जरासंध का किला है।''

''ऐसी बातों पर कम ही विश्वास होता है। जब हम कहते हैं कि मुंगेर जरासंध का कैदखाना था, वह अपने विरोधियों को इस कैदखाने में ही रखता था, तो आप यूँ समझिए कि मुंगेर गंगा और पहाड़ के बीच पड़ने वाला वह क्षेत्र है, जहाँ से अपराधियों का भाग निकलना संभव नहीं हो सकता था। जब हम मुंगेर को जरासंध का बनाया हुआ कैदखाना कहते हैं, तो इसका मतलब यही समझना चाहिए कि जब कैदियों को या दुश्मनों को मुंगेर में लाकर छोड़ दिया जाता था, तो वह उसके लिए वह कैदखाना ही बन जाता था।''

''आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं डॉ. साहब। कुँवर विजयमल की कथा में एक प्रसंग आया है कि विजयमल की बाराती में आये हजारों लोगों को जिस कैदखाने में बंद किया जाता है, वह पत्थरों-चट्टानों से बना हुआ कैदखाना नहीं है, बल्कि जंगलों और नदियों के बीच की वह जगह है जो कैदखाने से किसी भी तरह कम नहीं है।''

''बस तो आप ठीक समझ रही हैं। विजयमल के देशकाल को कुछ इसी तरह की ऐतिहासिक समझ और श्रोतों के सहारे जाना जा सकता है। मुझे तो लगता है कि इस लोकगाथा में जिस धुनधुनिया या

गुनगुनिया स्थान का जिक्र आया है, कहीं वह आज का गनगनिया ही तो नहीं। समय-काल के प्रवाह में चाहे नामों में जितना भी परिवर्तन आ जाये, लेकिन पहचान के लिए कुछ-न-कुछ अंश शेष रहता ही है। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि घुरमल के राज्य का जैसा वर्णन लोकगाथा में आया है, वह मैदानी इलाके का ज्यादा लगता है, और बावन सुआ के जिस राज्य का उल्लेख है, वह बिल्कुल पहाड़ी क्षेत्र है। इसी से बावन सुआ के क्षेत्र की तलाश अगर कोई मुंगेर के खड़गपुर या मल्लेपुर के पूर्व में करता है तो यह अस्वाभाविक भी नहीं लगता है। वैसे जगप्रिय जी ने अपनी एक लघु पुस्तक में कुँवर विजयमल या घुरमल के क्षेत्र संथाल परगना के राजमहल को ही माना है।''

''धन्यवाद डॉ. साहब।'' मान्यता ने बड़ी विनम्रता के साथ कहा था, ''आपसे मिलना मुझे इतना अच्छा लग रहा है कि मैं बता नहीं पा रही हूँ। क्या हम लोग फिर मिल सकते हैं? आप मुझे फिर समय दे सकते हैं? वैसे मैं समझ गयी हूँ कि आप शायद ही मुझसे अकेले में मिलना चाहें। लेकिन कोई बात नहीं, अर्पिता के इस कमरे में हमदोनों तो मिल ही सकते हैं?''

डॉ. अमरेन्द्र ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया था, सिर्फ एक हल्की हँसी बिखेर कर रह गये थे। उन्होंने मान्यता, और फिर मेरी ओर घूमते हुए कहा था, ''ठीक है अर्पिता, तुम्हारी सहेली जब भी मुझे बुलायेगी, मैं आऊँगा विश्वास करो।'' और इतना कह अपने जाने-पहचाने अंदाज में वह चुपचाप बाहर निकल गये थे।

(५)

उस दिन बिल्कुल मन नहीं लग रहा था। सोच नहीं पा रही थी

कि क्या करूँ कविता लिखने के लिए कई बार डायरी खोली लेकिन दो पंक्तियों के बाद कोई पंक्ति ही नहीं उतरी। सोचा महीने भर से एक कहानी का प्लॉट मन में घूम रहा है उसको ही लिख लूँ। लेकिन एक पन्ने के बाद उसे भी नहीं बाँध पाया। अजीब-सा मन खिन्न हो उठा था। यह भी नहीं पाता चल रहा था कि ऐसा मन क्यों हो गया। पता चलता तो उपचार भी संभव था, कि तभी मान्यता दरवाजा खोल सामने आ खड़ी हुई, ''अरी, मान्यता तुम?''

''इस तरह दरवाजा खोलकर रखोगी तो कोई मर्द मेरी तरह अचानक घुस आएगा, तब तुम क्या करोगी?''

''पहले कोई मर्द आये तो।'' मेरे इस उत्तर पर सिर्फ मान्यता ही नहीं मैं भी उसी तरह खिलखिला कर हँस पड़ी थी और फिर अपने बैग और दुपट्टे को बिछावन पर फेंकती हुई तकिए के सहारे पलंग पर वह जम गयी थी।

''क्या बात है आज अचानक दोपहर में?''

''अपने मित्रों से मिलने के लिए क्या समय भी निश्चित होता है? जब मन हुआ मिल लिया।'' यह कहते हुए मान्यता ने उससे कहा था, ''अर्पिता, तुम हो बहुत भाग्यवान कि तुम्हें यह डॉक्टर मिले हैं। सबको यह नसीब नहीं होता।''

''तो ले जाओ इस डॉक्टर को अपने घर में। मैं कहूँगी तो मान भी जाएंगे।'' मैंने मान्यता की गंभीरता तोड़ने के ख्याल से कहा, लेकिन वह गंभीर ही बनी रही। कुछ क्षणों के लिए वह मौन ही रही, फिर कहना शुरू किया, ''अर्पिता, अगर तुम्हारे गुरु मेरी थोड़ी-सी और मदद कर दें, तो मैं समझती हूँ मेरे जीवन की एक बहुत बड़ी कामना पूरी हो सकेगी।''

''कौन सी कामना? उसे आज तक तुमने बताया नहीं ।'' मैंने उसकी आंखों में कुछ झाँकते हुए पूछा था।''

''हाँ, नहीं बताया। सोच रही थी उसे पूरा कर लूँ, तभी तुम्हें बताऊँगी। लेकिन अब लग रहा है कि तुम्हारे डॉक्टर के बिना यह काम

पूरा नहीं हो सकेगा।''

''आखिर ऐसा कौन-सा काम है, जिसे तुम स्वयं पूरा करना चाहती थी, और अब ऐसा लग रहा है कि डॉक्टर के बिना पूरा नहीं होगा?''

''विजयमल पर एक उपन्यास लिखने का काम। आयी तो थी इस लोकगाथा के संकलन-संपादन के लिए, लेकिन यह काम अब पीछे छूट गया है। और मैंने इस पर एक उपन्यास लिखना आरंभ भी कर दिया है। जानती हो, यह उपन्यास आधे-से-अधिक पूरा हो भी गया है। लेकिन पता नहीं क्यों, हर बार यही लगता है कि मेरा उपन्यास, उपन्यास नहीं बन पा रहा है। कई बार मन में आया कि मैं तुमसे सहयोग लूँ, लेकिन यह सोच कर कि तुम तो कवयित्री हो, कहानियाँ भी अच्छी कह लेती हो, लेकिन उपन्यास तो कभी नहीं लिखा। और जिसने उपन्यास कभी नहीं लिखा, वह उपन्यास के संबंध में क्या बतायेगा। मुझे मालूम है तुम्हारे डॉक्टर ने उपन्यास भी लिखे हैं, और सबसे बड़ी बात कि उपन्यास पर उनकी समीक्षाएं भी प्रकाशित हैं। यानि वे उपन्यास के शिल्प को समझते हैं। अब अगर तुम्हारे डॉक्टर मेरे आधे -अधूरे उपन्यास को एक बार पढ़कर अपनी राय देंगे, तो मेरा सबकुछ संभल जाएगा। वह कहेंगे, तो आगे बढ़ाऊँगी, नहीं तो छोड़ दूंगी ।''

''अरे, तुम उपन्यास लिख रही हो और मुझे बताया तक नहीं। खैर कोई बात नहीं। मैं डॉक्टर साहब को स्वयं इस बारे में बताऊँगी, तुम मुझे एक सप्ताह का समय दो। मैं उन्हें कल अपने यहाँ बुलाती हूं। और फिर मैं ही तुम्हारे उपन्यास का पाठ करूँगी। चाहो तो तुम भी उस समय उपस्थित रह सकती हो।''

''नहीं अर्पिता, मैं सामने नहीं रहूँगी। वैसे तो तुम जानती हो कि मैं मन से कितनी मजबूत लड़की हूँ, लेकिन तुम्हारे डॉक्टर ने अगर मेरे उपन्यास को कमजोर सिद्ध किया, तो जानती हो क्या होगा? मेरे सपनों का किला ही ध्वस्त हो जाएगा।''

मैंने यह देखा, कि यह कहते हुए मान्यता का चेहरा एक अजीब

तरह के शोक में डूब गया था, जिसे देखते रहना मेरे लिए कठिन था। ''अरे ऐसा तुम क्यों समझती हो।'' मैंने उसकी पीठ पर अपनी दायीं हथेली को रखते हुए कहा था, ''वह डॉक्टर जरूर हैं, कसाई नहीं। कहीं कुछ कमियाँ होंगी, तो उन्हें सुधार भी देंगे। तुम जैसा उन्हें समझ रही हो, दरअसल वो वैसे हैं ही नहीं।''

मेरी बातों से मान्यता के चेहरे पर परिवर्तन हुआ था, और वहाँ उदासी की जगह एक प्रसन्नता खिल रही थी । मुझे अच्छा लगा। मैंने अपनी दोनों बाँहें उसके कंधे पर रखते हुए कहा, ''कहो तो मैं तुम्हारे लिए अभी ही डॉक्टर को बुला दूँ।''

''मेरे लिए? क्या मेरे लिए वह यहाँ चले आएंगे ? और अभी ही?''

''तुम आजमाना चाहती हो मान्यता? यूँ तो कल तुमसे उनकी पहली मुलाकात थी, लेकिन मैंने उनकी आँखों में तुम्हारे लिए लगाव महसूस किया था । उन्होंने भी समझ लिया होगा, तभी तो झट से अपने चेहरे को मेरी ओर कर लिया था।''

''तुम मुझसे मजाक कर रही हो, अर्पिता? मैंने अपने अनुभव से जान लिया है कि तुम्हारे डॉक्टर तब तक किसी युवती से आकर्षित नहीं हो सकते, जबतक कि वह उसे पूरी तरह पहचान न लें। अगर तुम यह बात अबतक नहीं जान पायी हो, तो जान लो अर्पिता।''

मेरे मन में आया कि मैं मान्यता से कह दूँ कि डॉक्टर के संबंध में अपना ऐसा निर्णय बना लेना, वह भी घंटे दो घंटे की मुलाकात में, तो यह भी उनके प्रति मान्यता का आकर्षण ही हो सकता है, लेकिन मैंने नहीं कहा। वह तो अपनी बातों के क्रम में कई बार स्वीकार भी कर चुकी है, कि तुम्हारे डॉक्टर अपनी विद्वता से किसी को भी बाँध ले सकते हैं। फिर इसे दुहराने की जरूरत ही क्या थी।''

''अर्पिता, क्या तुम्हें लगता है कि मेरे उपन्यास को वह पढ़ेंगे?

''तुम कहोगी तो वह पढ़ेंगे भी।''

''तो मैं अपना अधूरा उपन्यास तुम्हारे ही पास छोड़ जाती हूँ।

अब वे कब यहाँ आयेंगे?''

''आज ही वह आयेंगे। मैं उन्हें बुलाऊँगी, तुम्हारे लिए।''

''सच?''

मान्यता ने हर्षातिरेक में कहा था, और अपने बैग से एक मोटी-सी डायरी निकाल ली थी। फिर मेरे सामने उसे पसारती हुई बोली थी, ''यह देखो अर्पिता, यही है मेरा उपन्यास। जानती हो, तीन महीने से लगातार इस पर कुछ-न-कुछ काम करती रही हूँ । रात के जब दस बजते हैं, तब इस डायरी को लेकर बैठ जाती हूँ। लिखती ही रहती हूँ तब तक, जब तक रात के बारह नहीं बज जाते। लिखने का मन रहा, तब भी, न लिखने का मन रहा, तब भी। दिन में उसे उलट-पलट कर देखा, जँचा तो रख लिया नहीं, तो लिखे को यहाँ से लेकर वहाँ तक काट दिया। यह देख रही हो ना, कई जगहों पर कटे-कटे अंश। सोचा तो यही था कि इसे पूरा कर लूँगी, तो तुम्हें दिखाऊँगी। लेकिन अब पूरा करने की बात तो क्या, इसकी साफ प्रति भी तैयार नहीं कर पाऊँगी। एक भय रात से उग आया है। कहीं तुम्हारे डॉक्टर साहब किसी और जगह को चले गए तब?''

''अरे नहीं रे पगली, नहीं। डॉक्टर कहीं नहीं जानेवाले, जब तक नौकरी में थे, तब भी बाहर में नहीं रहे तो अब कहाँ जाएंगे। लेकिन तुम्हें इसकी कॉपी करने की जरूरत नहीं। मुझे लगता है कि अगर उनको पढ़ने में दिक्कत हुई, तो मुझसे ही यह उपन्यास सुन लेंगे। और संभावना तो इसी की है।''

मान्यता बाल-सुलभ चंचलता और प्रसन्नता से भर गयी थी, जिसे देखकर मैंने उसके गले में एक जोर की गुदगुदी लगा दी, ताकि वह और खिल उठे। और मेरे ऐसा करने से सचमुच ही वही हुआ था। शान्त कमरा अचानक ही मान्यता की खुली हँसी से गूँजने लगा था।''

''तो, अर्पिता अब मैं चलूँ?''

''लेकिन ऐसी भी क्या जल्दी है। रुक जाओ। तुम्हारे लिए बर्फ वाली बियर मैंने सुरक्षित रखी है। रुक जाओ तो हो जाए एक-एक।''

''नहीं, नहीं मैंने उस गायक भैया को बुलाया है। उसके सामने मैं सुरूर में रहूँगी, ठीक नहीं होगा। चलती हूँ अर्पिता। खबर करना कि तुमने मेरे उपन्यास की पाण्डुलिपि डॉक्टर साहब को दी, या फिर उनसे मुलाकात ही नहीं हुई।''

''तो ठीक है मान्यता। अब तुमने गायक को बुलाया है, तो मैं रोकूँगी नहीं।''

उसने मेरी बातें सुनी थी, और झुककर शायद चिढ़ाने के लिए ही मुझे सलाम किया था। फिर तेजी से कमरे से बाहर निकल गयी थी।

(६)

रात हो रही थी । घर में आज मैं अकेली ही थी। माँ भी बगल के किसी घर में गयी हुई थी। ब्याह में भाग लेने का निमंत्रण था, तो जाहिर है कि माँ लौटेगी भी तो बारह-एक के पहले नहीं। और तब तक मुझे जागना पड़ेगा, दरवाजा खोलने के लिए लिए। सोचा, क्यों नहीं मान्यता के उपन्यास को ही देख जाऊँ। जागना भी हो जाएगा और मन भी लग जाएगा। यह सोचकर मैं पाण्डुलिपि को उठा लेती हूँ। उलटाती-पलटाती हूँ। पूरा-का-पूरा उपन्यास शीर्षकों में बँधा हुआ है, और बीच-बीच में परिच्छेद के नीचे मान्यता ने कुछ अपनी ओर से टिप्पणी भी लिख दी है। मुझे अजीब-सा लग रहा है । आज तक मैंने ऐसा उपन्यास नहीं देखा। पता नहीं, यह उपन्यास बन भी पाया है या नहीं। अगर रोचक न लगा और डॉक्टर साहब ने इसे मुझे ही पढ़ने के लिए कह दिया, तो भारी परेशानी। अच्छा तो यही होगा कि मैं उस उपन्यास को अपनी आवाज में रिकार्ड कर दूँ। और फिर कैसेट ही उन्हें थमा दूँ। जब चाहें, जहाँ चाहें सुन लेंगे। उन्होंने कमलेश्वर का वृहत

उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' को ऐसे ही सुना था । इतना सोचना था कि मैंने आलमारी से टेप रिकार्डर निकाला और उसे ऑन कर दिया। एक बार गला साफ किया और पढ़ना शुरू कर दिया। ''मान्यता के इस उपन्यास का पहला शीर्षक है—भूल । और इस शीर्षक के बाद उपन्यास इस प्रकार प्रारंभ है—शरीर की भूख भी अजीब होती है । बहुत कम लोग हैं जो अपनी जैविक इच्छाओं पर नियंत्रण रख पाते हैं । मनुष्य अपनी इन्द्रियों के सम्मुख बहुत लाचार है । वह ज्यों-ज्यों अपनी शारीरिक इच्छाओं को दबाने की कोशिश करता है, त्यों-त्यों उसका आवेग अतल से निकलकर ऊपर तक चला आता है, और उसके संपूर्ण दिलो-दिमाग को अपनी परिधि मे बाँध लेता है। धुनधुनिया के राजा घुरमल के साथ भी ऐसा ही हुआ होगा। नहीं तो क्या कारण था कि एक पुत्र की प्राप्ति, जिसका नाम हिरमल था, की प्राप्ति के बाद, जंगल जाकर भी राजमहल लौट आया। हिरमल की शादी भी की तो आगपुर की राजकन्या सोनामंती के साथ । अपार धन-दौलत को खुशी में लुटाया, हिरमल के जन्म से लेकर उसके ब्याह तक में, धुनधुनिया राज्य के सारे पुरवासी अघा गये। समय बीतता गया, घुरमल की काया पर उम्र ने प्रभाव छोड़ना शुरू कर दिया, और तब राजा को लगा कि यह संकेत मेरे वानप्रस्थ के लिए है। फिर क्या था, राजा ने मंत्री-परिषद बुलाई, सभा हुई। हिरमल को राज सिंहासन मिला, और राजा ने घोषणा की, वह कल ही वानप्रस्थ के लिए राजमहल छोड़ देगा। पूरे राजभवन में कोहराम मच गया। प्रजाएँ उदास हो गयीं। मंत्री विह्वल हो गये। राजा की रानी मैनावती तो एकदम उदास हो गयी। मुँह पर कोई बोल नहीं, आँखों में छलछलाते आँसू। सोने के रूप पर चंद्रमा का पूर्ण ग्रहण लग गया। राजा ने बहुत समझाया, बहुत तरीके से समझाया। रानी ने स्वीकार भी किया, तो बहुत भारी मन से।

[रानी कुछ बोल भी क्या सकती थी, आखिर औरत ही थी ना। रानी हो जाने से क्या हो जाता है। पुरूषों की हर इच्छा के सामने स्त्री को आखिर झुकना ही पड़ता है। इसलिए मैनावती भी अगर झुक गयी,

तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं । स्त्री के आंसू का मोल ही क्या है।]

बहुत भारी मन से मैनावती ने अपने प्रियतम पति घुरमल से कहा था—जैसी आपकी इच्छा। राजा ने अपने निर्णय के अनुसार अपने सारे राजसी वस्त्र उतारे थे, और सुबह होने से पहले ही जंगल की ओर निकल गये थे। न रानी को पता चला, न प्रजा को, न सैनिक को। अगर पता चला तो बस राजपुरोहित को।

[लेकिन राजा का यह निर्णय शायद असमय में लिया गया निर्णय था। राजा घुरमल की कहानी भी अजीब। जितने लोग उतनी ही कहानियाँ। कोई सुनाता है कि राजा को पहला पुत्र जवानी में ही प्राप्त हुआ था, कोई कहता है कि उन्हें पुत्र की प्राप्ति तब हुई, जब आधी उम्र पार कर गये थे। इसी कारण तो हिरमल के जन्म के दो वर्ष के बाद ही उन्होंने वानप्रस्थ ले लिया।

[पता नहीं सच कौन-सी बात है, लेकिन यह सवाल कोई क्यूं नहीं करता है कि राजा घुरमल का वानप्रस्थ कहाँ तक उचित था। हिरमल उन्हें जवानी में प्राप्त हुआ हो, या आधी उम्र के बाद, इससे कुछ भी नहीं होता । अगर मैनावती नहीं चाहती थी, तो उनको वनगमन नहीं करना चाहिए था। आखिर मन के विरूद्ध कोई तप-त्याग का महत्व ही क्या है। कौन जानता है कि जंग में जाने के बाद घुरमल को पत्नी की याद बेहद परेशान करने लगी हो। स्त्री को स्पर्श करने की इच्छा फिर बलवती हो उठी हो, कामदेव ने फिर वाण चला दिया हो एक योगी पर, और राजा घुरमल जंगल के सुख शांति को छोड़ लौट गया हो रानी मैनावती के पास। लेकिन यह सारी बातें लोकगाथा में नहीं मिलती। यह तो मेरे मन में उपज है, जिसे मैंने लिख देना उचित समझा है।]

घुरमल जब राजभवन लौटे तो प्रजा में खुशी की जगह आश्चर्य का भाव ज्यादा गहरा था, अनहोनी की भावना भी कम प्रबल नहीं। कोई वानप्रस्थी घर लौट आये, यह तो धर्म के विरूद्ध है। लेकिन राजा

के मन की बात कौन जानता था?

रानी मैनावती ने राजा को देखा तो हर्ष और आश्चर्य से कहा, ''आप?''

''हां रानी, स्वप्न में भगवती ने कहा—अभी तुम्हारा समय न वानप्रस्थ का है, न संन्यास का, इसीलिए तुम्हें जंगल छोड़ राजभवन की ओर लौट जाना चाहिए। मैंने भगवती से कहा भी कि अब मैं कैसे लौट सकता हूँ, तो देवी ने कहा—यह मेरा आदेश है । इसमें तर्क-वितर्क करने का कोई प्रश्न ही नहीं है । तुम अभी ही जंगल को छोड़ राजभवन की ओर लौट जाओ । हे रानी मैं देवी के आदेश की अवहेलना कैसे कर सकता था, इसलिए मैं चुपचाप यहाँ चला आया हूँ।

[रानी मैनावती को राजा घुरमुल पर एकदम विश्वास हो गया । उसे तर्क करने की जरूरत भी क्या थी। उसका पुरुष आ गया था, यही बहुत था। पता नहीं क्यों, स्त्रियाँ तर्क क्यों नहीं करना चाहती, दिल-दिमाग की खिड़कियों को बंद किये रखने में उन्हें अजीब प्रकार की शांति क्यों मिलती है? और तर्क नहीं करती हैं, बुद्धि के साथ नहीं चलती हैं, तो पुरुष अपनी छोटी-सी बात से ही उन्हें अपने वश में कर लेता हैं। नारियों की हार का एक कारण यह भी है।

क्या ऐसा नहीं समझा जा सकता है कि भगवती की आज्ञा वाली कथा घुरमल के मन की उपज हो। रानी की देह की गंध उसके मन से उतरती ही नहीं होगी, और इसी कारण राजा वानप्रस्थ के बाद भी राजा राजमहल को लौटने को विवश हो गया होगा।]

कुछ ही दिनों के बाद सबकुछ सामान्य हो गया था। प्रजापालक घुरमल की दानशीलता से प्रजाएं फिर पुलकित हो उठीं । राजभवन में फिर से उत्साह और आनंद की ज्वारें उठने लगी थीं। क्या संगीत, क्या समारोह, क्या सभाएं, सब अलग-अलग नहीं, सब एक साथ। और राजा ने अपने में एक नई स्फूर्ति, एक नया यौवन महसूस किया था। रानी

की उमंग का तो कोई अंत ही नहीं था । आखिर मैनावती फिर मां बनी। नौ महीने के बाद धुनधुनिया की प्रजा ने जाना कि राजा घुरमल को पुत्र की प्राप्ति हुई है। फिर वही गीत-नाद, फिर वही हर्ष-विलास, फिर वही दान-उपहार । सब कुछ होता रहा, लेकिन राजा के मन की दुविधा खत्म नहीं हो पा रही थी—क्या जंगल से लौटना उसका नीतिपूर्ण था? वानप्रस्थ के बाद यह घोर गृहस्थ आश्रम! और जब-जब राजा के मन में ये प्रश्न उठते, उसे अपने वार्धक्य का ख्याल हो जाता। और तब फिर वह सोचता—राजमहल अब उसके योग्य नहीं, वानप्रस्थ ही उसके योग्य है।

धीरे-धीरे उसकी यह भावना इतनी प्रबल हो उठी कि एक दिन उसने राजसभा बुलाई। मंत्री आये, महामंत्री आये, सेनापति आया, पुरोहित आये, राजपुरोहित आये। राजा ने राजसभा के बीच अपने मन की बात रखी, ''मेरे इस कमजोर होते शरीर का अब क्या भरोसा । उस पर कुछ सांसारिक इच्छाओं का भार, मैं चाहता हूँ कि इस भार से मुक्त हो जाऊँ। वैसे मेरे होने या न होने से राजकाज में कोई फर्क नहीं पड़ता। हिरमल का सुशासन सारी प्रजा को सुख पहुँचा रहा है । बस कई दिनों से मेरे मन में यह इच्छा प्रबल हो उठी है कि मैं सन्यास ग्रहण कर लूँ। वानप्रस्थ का संयम संभव नहीं हो सका, लेकिन सन्यास का संकल्प कभी कमजोर नहीं पड़ेगा। इसी से मैंने सोचा है कि अपने छोटे पुत्र कुँवर विजयमल का विवाह-कार्य संपन्न कर दूँ, ताकि सन्यास-काल में कोई सांसारिक इच्छा मुझे विचलित न करे।''

''आपने उचित ही सोचा है राजन्। लेकिन इसके लिए कन्या की तलाश भी आवश्यक है। क्या किसी राजघराने से विवाह का प्रस्ताव आया है?'' राजपुरोहित ने अपने आसन पर बैठे-बैठे पूछा था।

''हाँ, पर्वतगढ़ के राजा बावन सुआ के बारे में आपलोगों ने सुना ही होगा । सभी जानते होंगे कि उन्हीं की पुत्री है तिलकी।''

''इससे और बढ़िया क्या हो सकता है महाराज, कि कुँवर विजयमल का विवाह राजकुमारी तिलकी के साथ संपन्न हो जाये। मैं

बिना ज्योतिष-गणना के भी बता सकता हूँ कि यह विवाह राजकुमार और राज्य के हित में अति उत्तम होगा।''

[पता नहीं राजा को राजपुरोहित की बातों पर भरोसा हुआ या नहीं। हुआ ही होगा, क्योंकि हिन्दुस्तान में एक प्रतिशत लोग ही हैं, जो भविष्यवाणी पर भरोसा नहीं करते। भरोसा तो मुझे भी नहीं है। कारण साफ है। जब छोटे राजकुमार का जन्म हुआ, तो पुरोहितों ने यही भविष्यवाणी की थी कि अब राज-काज में कहीं शोक व्याप्त नहीं होगा। लेकिन राजा शोक की बात कर रहे हैं। घुरमल सन्यास लेंगे। प्रजा को शोक होगा। पुरोहितों ने तो यही कहा कि नवजात राजकुमार सभी विपत्तियों और शोक पर विजय प्राप्त करने वाला होगा, इसी से इसका नाम विजयमल रखा जाए। कहाँ यह बात हो पायी? लेकिन मुझे क्या लेना, मैं भी क्यों न अपनी शांति के लिए यह मान लूँ कि यश-अपयश विधि हाथ।]

सभा में उपस्थित सभी माननीय के चेहरे पर उल्लास का रंग चढ़ गया था। यह देखकर राज पुरोहित ने पुनः राजा से पूछा, ''क्या किसी संदेशवाहक के माध्यम से आपने संदेश भेजा है?''

''हाँ, भेजा था, और राजा ने उसे स्वीकार भी कर लिया है। अब मैं अपने पुत्र हिरमल को सौ सैनिकों के साथ भेजने का मन भी बना रहा हूँ।''

राजा की बातों को सुनकर सभा में खुशियों की बाढ़ उतर आयी, और तालियों की गड़गड़ाहट से राजा के निर्णय का समर्थन हुआ।

समय बदलता रहा। दिन आए, पक्ष बीते, और आखिर में वह दिन भी निकट आ गया, जब बावन सुआ अपने बावन लाख सगे-संबंधियों के साथ धुनधुनिया पहुँचनेवाला था। वैसे घुरमल के राज्य में किसी चीज की कमी तो नहीं थी, राजमहल का राजकोष भी कम समृद्ध नहीं था, लेकिन बावन लाख लोगों का राजसी स्वागत कोई सामान्य

बात तो नहीं थी। घुरमल के माथे पर चिंता की लकीरें उभर आयीं। हजार मन दूध को फाड़ने के लिए नींबू की एक बूंद ही काफी होती है। रानी से राजा की परेशानी छुपी हुई नहीं थी, लेकिन वह कर ही क्या सकती थी। उधर हिरमल भी अपने पिता के चिंतित होने से कम परेशानी में नहीं था। आखिर उसने सोचा, परेशानियाँ सिर्फ सोचने से दूर नहीं होती, बल्कि उसके साथ संघर्ष करने से हटती हैं। लेकिन कैसा संघर्ष?

क्या करे वह? ढेर सारी चिंताओं के बीच हिरमल के चेहरे पर हठात् ही मुस्कुराहट की लालिमा उतर आयी। वह अपने पिता के पास पहुँचा । कहा, ''पिताजी, चिंता करने की कोई बात नहीं। स्वागत में किसी तरह की कोई कमी नहीं आने दूँगा।''

''लेकिन यह किस तरह से संभव है?''

''पिताजी, मैंने यह निर्णय ले लिया है कि हमारे राज्य में जब बावन लाख बाराती पहुंचेंगे, इसके पहले ही महल के चारों ओर तेल से भरे बड़े-बड़े कलशों को रखवा दिया जाएगा, ताकि बाराती जल से नहीं, तेल से अपने हाथ-पाँव धो सकेंगे। फिर कुओं और कुण्डों में इतना घी भर दिया जाए कि जब बाराती कुल्ला करें, तो उन्हें लगे कि वह घी से ही कुल्ला कर रहे हैं। इसी तरह मैंने ये सोचा है कि सारे सरोवरों और तालाबों में इतनी चीनी और मिश्री को डाला जाए कि उन तालाबों और सरोवरों का जल ही शर्बत बन जाए। तब वास्तविक शर्बत से स्वागत करने की जरूरत ही कहाँ रह जाएगी।''

पुत्र की बातें सुनकर राजा की सारी चिंताएँ दूर हो गयीं। उसने हिरमल के माथे पर हाथ रखा और कहा, ''ऐसा ही राजपुत्र, शासन और प्रजा की रक्षा कर सकता है। क्या कहूँ, एक क्षण के लिए मैं तो यहाँ तक सोच बैठा था कि कोई-न-कोई बहाना बनाकर इस रिश्ते को ही टाल दिया जाए। और यह असंभव भी नहीं था। यह तो तुम्हें भी मालूम है और राजा बावन सुआ को भी कि राजकुमार और राजकुमारी की उम्र में साल भर का अंतर है, हमारा विजयमल पंद्रह वर्ष का है और बावन

सुआ की राजकन्या सोलह वर्ष की।''

''पिताजी अब इन सारी बातों को अपने दिमाग से हटा दीजिए। विजयमल की शादी राजकुमारी तिलकी से ही होगी, और वह भी अपूर्व शाही अंदाज से। स्वागत की सारी तैयारियों का भार आप मुझ पर छोड़ दें।''

पुत्र की बातें सुनकर राजा के चेहरे पर असीम सुख-शांति का तेज प्रकाश फैल गया था।

दिन बीते, और वह दिन भी आ गया जब बावन सुआ अपने बावन लाख सगे-संबंधियों के साथ घुरमल के राज्य में पहुँच गया। कहीं कोई परेशानी नहीं हुई, सबकुछ वैसा ही हुआ जैसा कि हिरमल ने सोच रखा था। सारी व्यवस्था सुनियोजित थी। बावन सुआ ने जब यह देखा तो उसके आश्चर्य और आनंद की कोई सीमा न रही। गौरव हुआ कि ऐसे परिवार में राजकुमारी का संबंध होने जा रहा है। दान-दहेज में अपार संपत्ति को देखकर घुरमल की खुशी की भी कोई सीमा नहीं थी। संपत्ति का ऐसा आदान-प्रदान हुआ कि सारे स्वजन-पराये आश्चर्य में डूब गये।

[मैं यह समझ नहीं पा रही हूँ कि संबंध दो परिवारों का परिवारों से बन रहा था कि संपत्ति का संपत्ति से। औरत होने के नाते मैं सोचूँ कैसे नहीं कि तिलकोत्सव में संपत्ति न चढ़े तो युवतियाँ वेदी पर चढ़ जाती हैं। सुहागरात में नहीं, तो महीने-दो-महीने बाद या तो दुलहन जला दी जाती है, या फिर गला घोंटकर मार दिया जाता है। यही है वह औरत, जिसके बारे में शास्त्र कहता है कि स्वर्ग में यह देवता से पूजित होती है तो धरती पर पुरूषों से। सब बकवास है। सब झूठ। विवाह में जितना अधिक दहेज दिया जाए, स्त्री का उतना ही अधिक सम्मान। नहीं तो क्या कारण था कि जब बावन सुआ से तिलकोत्सव में बावन लाख रूपये, बावन मन सोना, बावन लाख के वस्त्र राजा घुरमल को मिले ही, तो बावन लाख के बर्तन नहीं मिलने से क्या हो जाता था?

लेकिन इसके लिए तिलकोत्सव पर ही वाक्‌युद्ध छिड़ गया। अगर थोड़ी-सी समझदारी से काम नहीं लिया होता, तो संबंध ही विच्छेद था। कुछ भी काम नहीं आता तिलकी का सौंदर्य और शील-गुण। इसी से समझा जा सकता है समाज और परिवार में स्त्री की स्थिति और सम्मान की सीमा। लेकिन यह सब मैं क्यों सोचूँ।

[इस बात का कम गौरव हो रहा था कि लेनदेन में कहीं-से-कोई कमी नहीं रखी गयी। और विवाह में यही लेनदेन भारतीय समाज का सबसे बड़ा कोढ़ है। तब से लेकर आज तक किसी भी शासक ने इस क्षय रोग खत्म करने की कोशिश नहीं की । इस तरह का विवाह सिर्फ यह दर्शाता है कि समाज में स्त्रियों की क्या स्थिति है? संपत्ति से उसका मूल्य निर्धारित किया जाता है, और जिस समाज में ऐसी व्यवस्था हो, वहाँ स्त्रियों की मुक्ति का कोई रास्ता नहीं खुल सकता। वह परिवार में नौकरानी भले न हो, लेकिन गहने-जेवर और विभिन्न कीमती वस्त्रों में सजी अपने पति, अपने श्वसुर, अपनी सार की सेविका होने के अतिरिक्त क्या हो सकती है। स्त्री-रूप और आभूषण की ऐसी कोमलांगी मूर्ति, जो पुरूषों के मनोरंजन का या तो साधन है, या फिर घर सजाने की कोई सामग्री। लेकिन मैं यह सब क्यों सोचूँ, मैंने तो यह तय कर लिया है कि शादी नहीं करूँगी चाहे, इसके लिए मेरी माँ जहर खा ले, या फिर पिता को ही आत्महत्या करनी पड़े। एक बार जिससे दिल लग गया था, जब उसे ही हासिल नहीं कर सकी, तो अब किसी के लिए कोई ललक क्यों।]

लेकिन राजा घुरमल की इच्छा पूरी होने जा रही थी । कुँवर विजयमल के लिये यह विवाह मेले में आनंद लूटने की तरह था। शायद कुछ समझता भी हो, लेकिन राजकुमारी तिलकी उसकी स्त्री होगी, उसका परिवार बसेगा, और एक दिन फिर वह राजा बनेगा, इतनी सारी बातें तो वह नहीं ही समझता होगा । और इन बातों से अनभिज्ञ राजा घुरमल समय आने पर बरातियों के साथ बावन गढ़ की ओर निकल

पड़ेगा, और वह भी बाराती दो-चार के साथ नहीं, बल्कि पूरे बावन लाख के साथ।

[अजीब है आदमी का स्वभाव। विवाह में इतने-इतने आदमियों का जाना क्या जरूरी था। विवाह होता है या तमाशा। लोग जाते तो हैं सुख-भोग के लिए, लेकिन उसी सुख के बीच से जब दुख का बवंडर उठता है, तो न जाने कितने-कितने को अपने में समेट लेता है। घुरमल और हिरमल को भी क्या मालूम था कि बावनगढ़ उन सबों के लिए यातनागृह सिद्ध होगा। छल चाहे हिरमल की ओर से हुआ हो, या बावनसुआ के पुत्र माणिकचंद की ओर से, छल तो हुआ था। हो सकता है कि हिरमल ने बावन सुआ को अपमानित करने के ख्याल से ही बावन लाख के बर्तनों को छिपवा दिया हो, या फिर माणिकचंद ने ही उन बर्तनों को नहीं लाया हो। कारण चाहे जो कुछ भी हो, उसका परिणाम तो अब निकलना था। घुरमल और हिरमल उस घटना को भले ही भूल गए हों, लेकिन माणिकचंद नहीं भूल सका था। और आदमी के मन में कहीं कोई बात धँसी रह गयी हो, तो ज्यों-ज्यों समय बीतता है, उसका परिणाम भी उतना ही घातक होता चला जाता है।]

माणिकचंद से रहा नहीं गया तो अपने पिता से कहा, "पिताजी, यही समय है जब मैं अपने मन की पीड़ा को खत्म कर सकता हूँ। मुझे तिलकोत्सव पर बर्तन को लेकर जिस तरह अपमानित होना पड़ा था, उसका दर्द अब भी मेरे मन में तीर की तरह धँसा हुआ दुख देता है।" और जब माणिकचंद ने कहना शुरू किया, तो न जाने कितनी देर तक कहता रह गया। तब तक कहता रहा, जब तक कि बावन सुआ को यह विश्वास नहीं हो गया कि हिरमल ने उसके पुत्र का सचमुच में अपमान किया है । और जब माणिकचंद अपमानित हुआ है तो बावनसुआ भी अपमानित हुआ है। और अपमान करने में सिर्फ हिरमल का ही हाथ है। अजीब है मनुष्य का दिलो-दिमाग। एक बार अगर उसके दिमाग में यह

बात धंसा दी जाये कि यह सच है, या फिर ये गलत है, तो वह स्वयं निर्णय लेने में कितना अवश हो जाता है। मान लेता है कि यह गलत है या फिर यह सही है। फिर तो इसका जो दुष्परिणाम होना होता है, होकर रहता है। न बावन सुआ को इस बात का ख्याल रहा कि धुरमल के साथ कोई भी अनैतिक व्यवहार उसकी बेटी के सौभाग्य को ही उजाड़ देगा, और न तिलकी के भाई माणिकचंद को ही इसका ख्याल रहा कि वह जो कुछ भी दुश्मनी में करेगा, वह बहन की मांग में सिंदूर नहीं, बल्कि आग रखने का काम करेगा।

पिता ने पुत्र से पूछा कि हमें बदला लेने के लिए करना क्या होगा, तो माणिकचंद ने कहा, जिस स्थान पर बारातियों को ठहराया जाएगा, वह घने जंगल का स्थान होगा, जंगल के बीच का स्थान इस तरह वृक्षों को काटकर साफ किया जायेगा कि वह जनवासा का रूप ले ले। फिर कटे हुए वृक्षों से ही जंगलों को इस तरह से बाँध दिया जाए कि किसी भी व्यक्ति का अंदर आना या बाहर निकलना मुश्किल हो जाए। सोचने भर की देर थी कि बावन हजार मजदूर इस कार्य में लग गए। पांच दिनों के अंदर ही जंगल का वह जनवासा बनकर तैयार हो गया। ऐसा कुछ सजाया गया कि किसी को यह अहसास न हो सके कि वह राजमहल के आमोद-प्रमोद का हिस्सा नहीं है।

जब आदमी के मन में वैर समा जाता है, तो वह बदला लेने के लिए कितने-कितने उपायों को सक्रिय करता है, यह तो विजयमल की कहानी पढ़कर ही समझ में आती है। माणिकचंद ने जनवासा के चारों ओर एक चौड़ी लंबी नदी खुदवायी। बीस कोस लंबी, और सौ कोस चौड़ी। गहरी तो इतनी खोदी गयी कि धरती से पानी निकल आया। एक उफनती हुई नदी उस जनवासे के चारों ओर बहने लगी। फिर जनवासे तक पहुँचने के लिए कटे हुए वृक्षों से ही सेतु का निर्माण किया गया। सेतु भी ऐसा, जिसे जब चाहे रातों-रात हटाया जा सके। आखिर यह सब असंभव भी तो नहीं था। इन सब कामों के निष्पादन के लिए माणिकचंद ने पठान सरदार चन्देल खां को लगा रखा था, जिसके नेतृत्व

में ही सवा सौ मुगल पठान काम कर रहे थे।

जनवासा तैयार हुआ तो भंगलपुर से चुने हुए तांत्रिकों को बुलाया गया, उफनती हुई नदी को वश में करने के लिए। कई रातों तक जल सिद्धि का कार्य चला, और फिर जल के देवता हाथ जोड़े हुए उपस्थित हुए, कहा—जो भी आदेश होगा, मैं वही करूँगा। तांत्रिक वीरभद्र ने कहा—जनवासा में कोई प्रवेश तो कर सके, लेकिन अगर वह बाहर निकलने की कोशिश करे तो नदी उसे निगल जाए, लेकिन यह बात जनवासे में आने-जाने वाली धोबिन पर लागू नहीं होगी। वरूण ने सब कुछ स्वीकार किया। लेकिन वीरभद्र के मन में अब भी कोई शंका शेष थी। कहीं वरूण ने अपने कथन का पालन नहीं किया तो? इसी शंका के कारण वीरभद्र ने फिर मंत्रोच्चार किया । चारों दिशाओं की हवाएं आंधियों की तरह बहने लगीं, शांत जंगल के पत्ते सूखी हड्डियों की झालरों की तरह खड़खड़ाने लगे। और माणिकचंद ने देखा कि सारी दिशाओं को भयभीत करने वाली एक राक्षसी (टुण्डिन राकसिन) जंगल के बीच से हाँफती-धाँफती चली आ रही है। सामने उपस्थित होते ही उस विशाल काया की राक्षसी ने कहा, ''मुझे क्यों बुलाया गया है?'' वीरभद्र ने कहा, ''तुम्हें इस जनवासे की रक्षा करनी है। वैसे तो इस कारागृह से एक भी व्यक्ति के बाहर निकलने की संभावना नहीं है, लेकिन अगर निकल ही गया तो तुम सीधे उसे उदरस्थ कर लोगी, यही मेरा आदेश है। राक्षसी ने स्वीकार में अपनी गर्दन हिलाई। सारी व्यवस्थाएं की जा चुकी थीं । बावन सुआ से लेकर माणिकचंद तक निश्चिंत हो गये थे।

(७)

[अर्पिता, तुमने मुझसे एक दिन पूछा था कि ऐसी सब कहानियों को

सुनने-लिखने में मुझे भय नहीं लगता ?

[सच कहूँ, भय तो नहीं लगता; हाँ घृणा अवश्य होती है—वैसे लोगों से तो होती ही है, उस समाज से भी होती है, जो ऐसी विकृत मानसिकता के लोगों का विरोध नहीं करता। तुम्हीं सोयो यह कोई बात हुई, छेका में हुई गलतियों का इतना भयावह बदला! ब्याह-शादी में तो कुछ-न-कुछ किसी बात को लेकर कहा-सुनी हो ही जाती है, तो इसका क्या मतलब कि इतने-इतने निरपराध लोगों के प्राणों को संकट में डाल दिया जाए। जंगल के बीच डाल देने की योजना और चारो ओर आगिन उगलनेवाली नदी की व्यवस्था, यह तो सामूहिक हत्या का अपराध लेने की तरह था। ऐसे क्रूर लोगों को देश में बने रहने का हक ही क्या !

[अर्पिता, तुमने उस दिन किस आदमी की क्रूरता कही थी, जो अपनी गर्भवती पत्नी के पेट पर खड़ा हो गया था और उसकी पत्नी फर्श पर खून से लथपथ हो गई भी—बच तो गई लेकिन महीनों माँस का लोथड़ा बनी रही। ऐसे सब आदमी को आकाश मुँह फाड़कर निगल क्यों नहीं जाता। जानती हो, उस दिन मैं सचमुच बहुत परेशान रही थी। नींद नहीं आ रही थी, बिलकुल नहीं आ रही थी, तो ऐसे में क्या करती—तुम्हारा नाम लिया और सिरहाने में पड़ी ह्विस्की की शीशी को खाली कर गई । लगा नींद आ जायेगी लेकिन ऐसा नहीं हुआ था । मुझे उस दिन बहुत आश्चर्य हुआ था कि उस अपराध को सुनाकर तुम ऐसे शांत रही; जैसे, तुमने ऐसी-वैसी बातें सुनाई ही न हो। इस बार मैं अगर बिहार आई, तो जरूर विस्तार से बताना कि उस पापी ने आखिर ऐसा किया ही क्यों था और यह भी बताना कि बच जाने पर क्या उस महिला ने उसके खिलाफ कुछ भी नहीं किया ? मेरा मतलब थाने-आने में जाकर कुछ नहीं कहा ?

[और एक बात अर्पिता, अब यह क्रूरता की कथा किसी से मत कहना। मैं तुम्हारी तरह कविता-उविता तो नहीं रचती लेकिन तुमसे उस कुरता की कथा सुन डायरी पर कुछ पंक्तियाँ जोड़ी थीं। वह भी यहाँ पर लिख रही हूं। बताना कविता-सी लगती है क्या ? नहीं भी बनी हो, तो

कोई बात नहीं और हाँ, मैं यह तो तुम्हें बताना ही भूल गयी कि उस घटना को याद कर-कर के मैं जितनी रात परेशान रही; कुछ -न-कुछ लिखती रही। सारी पंक्तियां उसी तरह नीचे रख रही हूँ—उबना नहीं !

[नहीं-नहीं। नहीं लिखूंगी अपनी कविता। वह कविता किसी तरह से है भी नहीं। कविता की रचना सहज नहीं है। मनुष्य की सारस्वत प्रतिभा की स्वाति-बूंदें हैं। वैसे भी तुम्हारा मन तो मेध-वन की छाया है और मेरी कवितानुमा पंक्तियाँ जेठ की चिलचिलाती धूप-सी हो गई है। इसकी जगह मैं तुम्हारी कविताओं से चुनकर एक कविता लिख दे रही हूं ताकि जड़ता से निकल कर कुछ उर्बर हो सकूँ। फिर से अपनी इन कविताओं को पढ़ लेना :

कौन कहता है कि
रात भर बाहर खड़े पाले की चुभन से
सिर्फ तुम ही बिंधते रहे
काश तुम यह भी जान पाते कि
इस जलती हुई लकड़ी के पास
तुम्हें याद करती अकेली बैठी मैं भी
कितनी सर्द-सर्द होती रही, होती रही।
मेरी आँखे
तुम्हारे साथ रहने पर भी झील बनी रहती हैं
जिनमें उतराती रहती हैं तुम्हारी परछाइयाँ
वही झीलें तुम्हारे जाने के बाद
यकायक समुद्र बन जाती हैं
जिनमें प्रतिबिम्ब उतरते रहते हैं
तुम्हारी ढेर सारी स्मृतियों के आकाश।

[गजब की कविताएं रचती हो, अर्पिता। तुम्हारे साथ इतने दिनों तक मंदार की छाया में रही। न तुमने कभी बताया कि कागज पर अपने मन को इस तरह उतारती हो। मैंने भी कभी यह जानने की कोशिश नहीं कि क्यों तुम अकेले-अकेले लाइब्रेरी में बैठी वैसी-वैसी

पुस्तकों को उलटाया करती थी, जिनको विद्यापीठ के किसी शिक्षक ने कभी नहीं उलटाया हो। तुम्हें पढ़ाना था कुछ और तुम पढ़ती थी—कामायनी, ग्रंथि उर्वशी, साकेत, दीपशिखा। जब उस दिन तुमने मुझे अपनी कविता पुस्तक 'गुलमोहर का चाँद' दिया था तो जानती हो केरल तक आते-आते मैंने दस से अधिक बार उस संग्रह को पढ़ लिया था—कभी गुलमोहर बनती रही और कभी चाँद। सोचती रही—ऐसा ही तो कुँअर विजयमल की तिलकी को भी लगता होगा। भले ही कुछ-कुछ, क्योंकि उसकी उम्र ही क्या होगी तब ? अगर विजयमल की उम्र तब बारह-तेरह की मान लूँ, तो तिलकी की उम्र आठ-दस से अधिक नहीं होगी।

[मुझे आश्चर्य है कि अंग प्रदेश, जो स्त्रीखंड भी कहा जाता है, उस क्षेत्र मे बड़े-बड़े लोकनायकों पर मोटे-मोटे काव्य लिखे गये लकिन लोकनायिकाओं पर नहीं। उनके नाम भी नायकों पर ही हैं—बस दो-तीन 'हिरनी-बिरनी', 'बिहुला-विषहरी', 'लचिका रानी' को हटा दें तो। तुम्ही से मैंने सुना था कि हिरनी-बिरनी पर डॉ. मृदुला शुक्ला ने एक उपन्यास लिखा है और डॉ. मीरा झा ने बिहुला पर एक उपन्यास । जानती हो, उन दोनों उपन्यासों को मैंने डॉ. साहब से मांग लिया था । तुमने डॉ. विद्या रानी का जो उपन्यास 'लाचिका रानी' दिया था, वह उपन्यास भागलपुर में ही छूट गया। कभी आना हुआ, तो उसकी एक प्रति उपलब्ध कराना। कौन थी यह लचिका रानी, जानने की जिज्ञासा ही रह गई। तुम्हारे डॉ. साहब बता रहे थे कि और दो और लेखकों ने लचिका रानी पर उपन्यास लिखा है। अनिरुद्ध प्रसाद विमल और डॉ. प्रतिभा राजहंस ने। हाँ, ये ही नाम उन्होंने बताये थे । लेकिन मैं पूछती हूँ, अंगिका की जितनी लोकगाथाएं हैं, सबमें एक नायिका तो होगी ही, तो उन सभी नायिकाओं पर क्यों नहीं उपन्यास लिखे जा रहे? अगर ऐसा होता, तो अंगिका की पहचान कुछ अलग होती।

[अर्पिता, तुमने भी तो तिलकी पर कुछ नहीं लिखा। तुमसे ही तिलकी और सलखी के बारे में पहली बार मैंने बहुत कुछ सुना था। तुम चाहती तो तिलकी अमर हो सकती थी। मैंने तो तुम्हें तब जाना, जब

जसवंत सिंह विरदी का यह आलेख एक पत्रिका में पढ़ा। तुम अपने आपको पहचान सको, इसीसे वह आलेख नीचे लिख रहीं हूं, इसे फिर जरूर पढ़ना। मैं भी कहती हूँ—सचमुच में तुम यही हो। तो विरदी जी का अब वह आलेख :

आभा पूर्वे ! जैसे एक नग्मा हो !

वास्तव में आभा पूर्वे बिहार की सम्वेदनशील आत्मा है ! यूनानी मिथक में सूक्ष्म भावी तितली एक दिव्यात्मा है, जो इस बहुरंगी, महक से भरपूर प्रकृतिवाली धरती पर पहुँच कर फूलों, सुगन्धों से स्नेह करती है, और प्रसन्न होती है....मगर जब वह मानवीय आत्मा को यातना सहन करते देखती है, तो दिव्यात्मा से कवयित्री बन जाती है.....

कवयित्री भी विश्व के मिथक-साहित्य में एक दिव्यात्मा ही है.....

जब मैं आभा पूर्वे के साहित्य को पढ़ता हूँ तो मुझे उस दिव्यात्मा का शिद्दत से स्मरण होने लगता है.....

धरती पर पहुँच कर वह दिव्यात्मा एक सम्वेदनशील माता के दिल की भाँति कोमल भावी बन जाती है.....

राजनीति ने बिहार का स्वरूप बिगाड़ने की पूरी कोशिश की है, मगर जब तक बिहार की आत्मा जीवित है, बिहार का कोई भी विनाश नहीं कर सकता ।

मगर आत्मा को जीवित रखने के लिए रक्त से दीया जलाना होता है.....ताकि आत्मा के लिए प्रकाश बना रहे । आभा पूर्वे साहित्य में अपने रक्त से ही दीया जलाती है.....मगर विसंगति देखिये !

बिहार की यह सम्वेदनशील आत्मा अपनी कविता में कैक्टस बनने की इच्छा करती है, ताकि वह कैक्टस अपने काँटों की बदौलत जीवित रहे और उसे कोई भी राक्षसी शक्ति बर्बाद न कर पाए ।

कैक्टस भी प्रकृति की, वात्सल्य की देवी का ही एक अंश है, जो किसी शाप के कारण स्वर्ग-लोक से धरती पर आई थी, मगर उसे

अपने सुरक्षा-कवच के रूप में काँटे मिल गए थे । आभा पूर्वे का सुरक्षा-कवच उसका साहित्य है ।

सम्वेदनशील आत्मा और कैक्टस !

आभा पूर्वे की कहानी 'भय' आँखों के सामने भय का वातावरण बना देती है...और 'चंदन जल न जाए' में भी एक भय व्याप्त है..... बिहार में भी.....

मैंने एक कहानी कैक्टस पर लिखी थी कि एक वनस्पति-विज्ञानी दस वर्षों तक कैक्टस से प्रार्थना करता है कि कैक्टस उसके लिए एक फूल का चेहरा साकार करे, जिसके साथ काँटे न हों । कैसी बावली इच्छा है, मगर कैक्टस ने विज्ञानी को निराश नहीं किया ।

प्रकृति मानव को कभी भी निराश नहीं करती.....आभा पूर्वे ने भी अपने विशाल सुहृद पाठकवर्ग (जो बंगाल से गुजरात और पंजाब से कन्याकुमारी तक फैला हुआ है !) को कभी निराश नहीं किया ।

वक्त के साथ बिहार की सम्वेदशील आत्मा भी कैक्टस हो गई है, मगर उसने जन.जीवन को फूल प्रदान करना नहीं छोड़ा.....काँटों के साथ फूल !

मैं अपनी छोटी बहन को पूछना चाहता था—तूने अपने लिए कैक्टस की कल्पना क्यों की ?

और वह एक श्रेष्ठ कविता कैसे बन गई ?

मगर यह सच है.....

'कैक्टस' आज के जीवन का प्रतीक बन गया है.....और पता ही नहीं चलता कि आभा पूर्वे अपने सम्वेदनशील पत्रें में श्रेष्ठ लेखिका है अथवा कविता/कहानी में ?

अपने पत्रों में वह केवल श्रद्धा है, कविता में दिव्यात्मा और कहानी में नारी की असीम पीड़ा.....

श्री नित्यानन्द उसके लिए घनी छाँव का एक बड़वृक्ष है, जिसकी सुखद छाँव में उसने जीवन के सभी सुख अनुभव किये हैं....

एक महान लेखिका जीवनलता पूर्वे की वह अद्वितीय कृति

है.....उस महान माता का दूध पीकर आभा पूर्वे बड़भागिनी हुई है.....

बिहार में कविता/कहानी लिखनेवाली अनेक निष्ठावान लेखिकाएँ हैं और उन्होंने स्वस्थ जीवन के निर्माण के लिए श्रेष्ठ साहित्य का सृजन किया है, राजधानी की लेखिकाओं से बिल्कुल विपरीत ! बिहार की लेखिकाओं के पास सचमुच ही सम्वेदनशील माता का दिल है.....

उनमें एक विशिष्ट नाम आभा पूर्वे का भी है,.....जो एक नग्मा भी है और बिहार की सम्वेदनशील आत्मा भी.....

बिहार की इस सम्वेदनशील आत्मा को माता सरस्वती गर्म हवाओं के बेदर्द प्रभाव से बचाये रखे !

[दुनिया इसी स्नेह-प्रेम के कारण अब तक बनी हुई है और यही जब सूख जाता है, तो किस अमृतवृक्ष और किस अमृतफूल की आकांक्षा! अर्पिता, तुम खुशनसीब हो कि तुम्हें विरदी जी जैसे कड़े भाई मिल गये हैं और डॉ. साहब जैसे गुरु। लेकिन मैं सोचती हूँ कि मैनावती को क्या मिला। सोचो घुरमल के संन्यास और कैद हो जाने बाद मैनावती के पास बचा ही क्या होगा—राजकाज और पुत्रों की रक्षा ! मैं सोच रही थी कि लोकगाथा में मैनावती के दुख मे लोकगीत-गायकों के खूब आँसू बहेंगे। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मैं यह नहीं जानती कि नीचे का यह गीत किसका है !

यह बादल आखिर बरस गया ।
प्रिय याद मुझे तड़पाती है,
निशि में भय आ ही जाता है,
पर दिल मसोस रह जाता है,
यह बादल आखिर सरस गया
यह बादल आखिर बरस गया ।
प्रियतम आयें, तब तक ठहरो,
मैं कहती रही, जरा सुन लो,
दग्धा पुकारती, दया करो,

पर बादल जरा न तरस गया
यह बादल आखिर बरस गया ।
मैं हार निदान, बरस, बोली
पर, लोचन—बाँध तुरत खोली,
लग गये होड़ दृग—तोयद में—
बादल भी आखिर हरष गया
यह बादल आखिर बरस गया ।

देखो, गीत लिखते-लिखते कवि का नाम याद आया जटाधर दूबे जी की रचना है । मैनावती का दुख मुझे इसमें झलका, तो लिख गई।

[मैनावती के आँसू न बहे, तो काई बात नहीं; एक उम्र हो जाने के बाद औरतें बहुत कुछ सह लेती हैं। धुरमल का वियोग भी सह लिया होगा उसने। लेकिन तिलकी का वियोग—वह तो अवश्य लोकगाथा में रहा होगा लेकिन उस गायक ने जो मुझे सुनाया, उसमें वियोगवाली बात ही नहीं थी। शायद गायक ने यह भी सोचा हो—इतनी कम उम्र की तिलकी भला वियोग की अनुभूति क्या होती है, क्या जाने—हो सकता है, लोकगाथा में ही नहीं हो।

[लेकिन तिलकी की उम्र इतनी भी कम नहीं रही होगी कि प्रेम और वियोग को समझती ही नहीं होगी—अगर नहीं समझती थीं, तो कुँअरमल को भाई के द्वारा जल्दी ही मार डालने की खबर से वह बेचौन कैसे हो गई ? कुछ नहीं, तो ग्यारह-बारह साल की वह अवश्य ही होगी, तभी तो अपनी सखी सलखी से अपने पति के बचाव की बात करती है।

[सलखी तिलकी से बता चुकी है कि उसके भाई मानिक चंद ने उससे लकड़ियां लाने को कहा है और जलती लकड़ियों के बीच ही राजकुंवर को डाल दिया जायेगा । खैर, सखी सलखी और राजकुमारी तिलकी के रुहयोग से राजकुँअर घोडे की पीठ पर बैठकर राजमहल से निकलने में सफल हो जाता है। कुँअर अपना राज धुनधुनिया पहुँच

जाता है और यहीं से शुरू होता है तिलकी का वियोग। लोकगाथा में हो-न-हो, मैं अपने इस उपन्यास में इसे डालना चाहती हूँ और तुम तो जानती ही हो अर्पिता कि वियोग-नियोग से मुझे कुछ विशेष लेना-देना नहीं रहा है। जीवन में प्रेम और वियोग के लिए अवकाश ही नहीं मिला, तो इसकी क्या अनुभूति होती है—क्या लिखूं लेकिन उपन्यास है, तो कथानक को उचित प्रसंग से भरना ही पड़ेगा, इसी से एक काम कर रही हूँ किसी और कवि की विरहनी के वियोग को यहाँ साट देती हूँ। हमलोग शोध में तो यही करते हैं दूसरे के कथन को अपने कथन से मिला देते है—प्रामाणिकता के लिए, बस ऐसा ही कुछ समझना।

[तुम्हें याद हो कि नहीं भी हो। मेरी वापसी पर तुमने ढेर सारी पुस्तकें दी थीं—उनमें एक काव्य यह भी था—साँवरी। यह कवि अनिरुद्ध प्रसाद विमल के अंगिका काव्य—कागा की संदेश उचारै, का हिन्दी अनुवाद है—कवि घनञ्जय मिश्र ने अनुवाद किया है। विरह का अद्भुत काव्य है। मैं उसी काव्य के कुछ अंश को इस तरह रख रही हूँ कि साँवरी तिलवी का रूप लेकर सामने आ जाए।]

(८)

कुँअर विजयमल के निकलते ही तिलकी का वियोग अचानक ही नदी में आई बाढ़ की तरह बह चली और महल की छत पर चढ़ कहने लगी;

आकर तो देखो, मेरे प्राणपति
आज कितनी भयावह लगती है
पहाड़ की हँसी
कि आकाश हो गया है सुरसा का मुँह

यह इंजोरिया, जिसके हो दाँत
नदी के दोनों किनारे
जैसे, इसकी दो बाँहे लगते हैं
सब मिल कर मुझे खा जायेंगे ।
यह वही
गहराइयों और ऊँचाइयों वाला
जेठोर का पहाड़ है
जो तुम्हारे साथ रहने पर अपने पंख पसार
उन पर चढ़ा घुमाता था मुझे
और आज उसी पहाड़ को लगता है
हजारों-हजार हाथ निकल आये हैं
और नदी किनारे के सभी बाँस
उसके हाथों में बन गये हैं भालों की तरह
हवाओं में करचियाँ
नागों की तरह फुंफकारती हैं
लगता है
फनवाले हजारों नाग के भाले लिए
पहाड़ दौड़े चला आ रहा है
ऐसे में तुम नहीं हो तो मैं चाहती हूँ
कि यह आकाश उलट जाए और मैं
इसकी गहराई में डूब कर मर जाऊँ ।

अद्‌भुत बेकली है । दिन बीत रहे थे, ऋतुएं क्रम से आ रही थी और ग्रीष्म के बाद बरसा भी आई, तो तिलकी का वियोग इस तरह उमड़ पड़ा :

सुनो प्रियतम
मेरी आँखों का बरसना देख कर
सावन ने बरसना छोड़ दिया है
यही कारण है कि

नहीं बरसते हैं अब
सावन के ये मेघ ।
सूखा ही रहता है यह पूरा सावन
और यह जो कभी-कभी
चाँद छिप जाता है मेघ से
जानते हो प्रियतम
यह क्या है ?
यह मेरी आँखों के बहते काजल हैं
और मेरे ही बिखरे केश
अगर मेघ होते
तो बरसते नहीं ?

[अर्पिता, अब लगता है, उपन्यास का कुछ रंग आ गया इसमें। अब इससे पता भी चलता है कि तिलकी तेरह-चौदह साल से कम की नहीं होगी और इस हिसाब से कुँअर विजयमल की उम्र पन्द्रह के आसपास। मैं तो यह किसी तरह मानने को तैयार नहीं हूँ कि इससे कम की उम्र उसकी होगी, जब उसे अग्निकुंड में जलाने का षढ़यंत्र रचा जा रहा होगा।

[खैर जब वह अपने पिता-भाई सगे-संबंधियों को छुड़ाने के लिए घुनधुनिया से घोड़े पर चला होगा और बावन गढ़ के सैरा तालाब के किनारे उतरा होगा, तब उसके सीने में भी तिलकी के लिए बहुत कुछ जागा होगा, कहने का मतलब यह कि वह कैसी होगी ? महल के किस कक्ष में रहती होगी ? हीरे-जवाहरात से जड़ा हुआ महल। महल में कैसे वह प्रवेश कर सकेगा ? अगर वह प्रहरी द्वारा पकड़ लिया गया, तो क्या होगा यहीं सारी बातें ? और तब आखिर में उसने यह उपाय सोचा होगा—कि क्यों नहीं साधू का भेष बना लिया जाय।

[हाँ अपने यहाँ किसी से मिलने या छलने के लिए साधु का भेष ही उपयुक्त और आसान मार्ग होता है। रावण ने भी कही किया था और कर्ण को घलने के लिए इन्द्र ने भी वही किया था ।

[बुरा मत मानना, मैं बीच में रुक कर डॉ. साहब के महाकाव्य कर्ण के उस अंश को यहाँ जोड़ रही हूँ—जिसे मैंने कई बार पढ़ा है। जानती हो क्यों ? इसमें इन्द्र को शुद्ध खलनायक रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है । वह एक ऐसे पात्र के रूप में चित्रित है, जैसा एक व्यक्ति का हो सकता है या होता है। तुमने तो वह अंश पढ़ा ही होगा, फिर कुछ पंतियां यहाँ लिख रही हूँ। अच्छा छोड़ो, स्वयं पढ़ लेना ।

[उपन्यास के पात्र भी ऐसे ही होने चाहिए। वैसे उपन्यास और महाकाव्य में गद्य और पद्य को लेकर ही अंतर है, वरना सब कुछ तो वैसा ही—घटना, चरित्र-चित्रण वर्णन की रोचकता, परिवेश की जीवंतता, सब कुछ मिलता-जुलता।

[उस दिन तुम्हें डॉ. साहब पढ़ा रहे थे। उपन्यासकार सुरेन्द्र प्रसाद के उपन्यास 'रमण दा' को उलटाते जाते थे और बताते जाते थे कि यह उपन्यास इसलिए सफल हो सका है कि यह एकरसता को अपना कर नहीं चलता, गंभीर करता है, तो पात्रों की गतिविधियों के चित्रों से हँसाता भी खूब है। कहीं उबने ही नहीं देता है उपन्यासकार। और जिस उपन्यास में उपन्यासकार की यह कला नहीं उजागर हो पाती, आखिरकार वह पाठकों द्वारा प्रशंसित भी नहीं हो पाता। उन्होंने एक बात बड़ी कीमती कही थी कि आप किसी पात्र को अपनी इच्छा के मोताबिक राक्षस या देवता मत बनाइए। हर पात्र में ये दोनो तत्व मौजूद होते हैं और परिवेश के उपस्थित होते ही वे अपने ढंग से जागृत होते हैं। एक कथाकार जब पात्र को उसके स्वभाव-परिवेश के साथ चलने के लिए छोड़ देता है, तो पात्र अजनबी-से नहीं, परिचित-से लगते हैं ।

[मैं उन बातों को भूल नहीं पाई और जब तिलकी या कुँअर विजयमल के बारे में कुछ लिखने की बात सोचती हूँ, तो उन बातों को याद कर लेती हूँ।

[अर्पिता, अब तुम्हीं देखो, जब विजयमल धुनधुनिया से चला होगा, तो उसने यह सोचा तो होगा कि उसे साधु का भेष धारण करना है—ये करना है, वह करना है। फिर साधु का भेष धारण करने के लिए

उसने सामान कहाँ से जुटाया था—उस गायक ने जो गाथा सुनाई थी, उसमें तो इन बातों का कोई जिक्र ही नहीं है, तो इसके लिए मुझे ही कुछ सोचना होगा। लेकिन तुम तो जानती हो कि यह समय मेरे बिलकुल एकांत होने का समय है। बोतल को कुछ नहीं हो रहा, भरी हुआ जो है । और खाली गिलास में लहरें उठ रही हैं। रात को कुछ उपन्यास के लिए मिल गया या फिर किसी का, तो इसमें जरूर जोड़ दूँगी—उपन्यास तो पूरा करना ही है और वह भी मुझे ही।

(६)

[उफ, सुबह के आठ बज रहे हैं और आँखें खोलने का मन नहीं करता। रात भर, घूम-फिर कर वही दृश्य आँखों के समक्ष आ जाता कि बावनसुआ घुनघुनिया आए हुए हैं—अपने साथ बावन सौ लोगों को लेकर; विजयमल को तिलक में बावन लाख रुपये दिए गये; बावन लाख के वस्त्र; फिर बर्तन भी बावन लाख के—आखिर क्यों न हो, राजा का नाम बावनसुआ जो था। तो क्या राजा ने बावन हजार या बावन लाख सुआ भी पाल रखा था ? आखिर बावन गढ़ के राजा का ऐसा नाम क्यों था ? लोकगाथा में इसका उल्लेख क्यों नहीं आया ? यह भी हो सकता है कि बावन सौ सुग्गे का मालिक हो, ऐसे सुग्गे का मालिक, जो सारी दिशाओं की खोज-खबर रखते हों या हो सकता है, वे सुग्गे भिन्न-भिन्न देशों के हों। कुछ तो बात होगी, नहीं तो बावनसुआ का नाम भी कुछ और होता।

[अर्पिता, इस लोकगाथा ने मेरे दिमाग को उलझा दिया है। सोचो, जो बावन गढ़ों का स्वामी होगा, वह बावन सौ सुग्गे को क्यों पोसेगा ! तब हो सकता कि एक-एक गढ़ की गुप्तचरी में सौ-सौ सुग्गे

को लगाया गया हो। बहुत अधिक संभावना इसी बात की हो सकती है। जानती हो, यहाँ मेरी एक सहेली है, झुमरी—खूब तर्क-वितर्क करनेवाली। कहती है—भला एक ही जगह में बावन गढ़ कैसे हो सकते हैं, कुछ भी सच नहीं लगता। अब उसे मैं कैसे समभाऊं कि लोकगाथा इतिहास नहीं है; उसमें इतिहास कल्पनाओं के रंग से भरा होता है। तुम्हारे अंगप्रदेश के वीरभूमवाले भाग में एक स्थान है, मलूटी जो कितने-कितने छोटे-बड़े शिव-मंदिरों का धाम है। साहित्य में जब इसीका वर्णन होगा, तो इस तरह कि आकाश को छूते सौ से अधिक शिवालय वहाँ शोभायमान हैं। बस इसी तरह मुझे कुछ बावन गढ़ के बारे में भी समझना होगा। एक मुख्य गढ़ होगा और उसके आसपास सैनिकों-मंत्रियों के रहने के लिए छोटे-छोटे गढ़नुमा भवन। तो सब मिलाकर हो गया न बावनगढ़ ।

[यह भी हो सकता है कि बावन भवनों की स्त्रियों के लिए बावन तालाब भी होंगे और उन तालाबों से अलग तिलकी राजकमारी के लिए विशाल तालाब—जिसका उल्लेख गाथा में सैरा तालाब के नाम से आया है। निस्संदेह वह बहुत ही आकर्षक होगा। चारो ओर सीढियों से सजा। तभी तो साधु भेष के कुँअर विजयमल ने चारो दिशाओं की सीढ़ियों पर अपने सामानों को रख दिया था। कहीं पर कमंडल, कहीं पर त्रिशूल, तो कहीं पर खड़ाऊँ और एक ओर की सीढ़ी पर तो स्वयं बैठ गया था। अब जो इतना दिमाग रखता हो, वह आठ-दस वर्ष का बच्चा तो होगा नही—कम-से-क्म पन्दुह-सोलह का तो होगा-ही-होगा।

[इसीसे मैं कहती हूँ कि सलखी की मदद से जब तिलकी ने विजयमल को छिछला घोड़े की पीठ से बाँधा नहीं होगा, उसकी पीठ पर बिठाया होगा। राजकुमार था और राजकुमार को तो बचपन से ही घुड़सवारी का प्रशिक्षण दिया जाता था।

[अर्पिता, अगर विजयमल को बाँधने की बात है, तो इसका मतलब है चार-पाँच साल से अधिक का न होगा और अगर ऐसा ही था, तो बावनगढ़ से बचकर निकल जाने के बाद जब वह अपने दोस्तों के साथ खेलने जानेवाला था, तब उसके लिए चालीस मन की गिल्ली और

अस्सी मन का डंडा बनवाया गया। यह तो तय है कि इसमें अतिशयोक्ति है या फिर गायकों का कमाल कि चार सेर की गेंद को चालीस मन की और आठ सेर के डंडे को अस्सी मन का बता दिया, लेकिन आठ सेर के डंडे से चार सेर की गेंद को कोई बालक क्या इतनी दूर फेंक सकता है कि वह मिले ही नहीं। बस इन बातों से इतना ही समझो कि विजयमल तब किशोर अवस्था से बहुत आगे यानी युवावस्था में पहुँच गया होगा और विजयमल युवा था, तो तिलकी के लिए उसके भी मन में प्रेम फूट रहा होगा, खासकर जब बावगगढ़ से लौटा होगा, तब कहीं एकांत में उदास बैठा ऐसा ही गीत गुनगुनाता रहता होगा :(नीचे जो गीत है, वह तुम्हारे 'शिशिर की धूप' काव्य से है, बस एकाध शब्द बदल कर इसे प्रसंग के अनुकूल बना लिया है।)

तुम नहीं हो
बाँसुरी पर बज रही है,
भ्रम कहो मत,
वह सही है ।
हैं हवाओं में किसी की आहटें,
पदचाप,
बज रहे हैं पाँव मेरे
आज अपने आप ।
बात है कुछ तो कही
कुछ अनकही है ।
युग-युगों से चाहता
जिस गीत को था,
मैं तड़पता ही रहा
जिस प्रीत की था,
बाँसुरी में बज उठा संगीत जो है
वह यही है ।

[लेकिन वह मन की बात कैसे कह सकता था। ऐसा नहीं है कि उसके

मन में अपने पिता, अपने भाई और सगे-संबंधियों को लेकर चिंताएं नहीं होती होंगी—होती तो जरूर होंगी लेकिन उसने देखा तो नहीं था अपने लोगों को बंदी होते, कुँअर तो राजमहल ले आया गया था। वह यह भी सोचता होगा कि उसे छोड़कर वे लोग किसी और देश पर आक्रमण के लिए निकल गये होंगे। यह सब अनुमान है। कुछ भी हो सकता है। लेकिन सारी बातों के साथ यह बात तो नहीं ही होगी कि उसे तिलकी की याद नहीं सताती होगी। सताती होगी और खूब सताती होगी। रात के एकांत में तो और । तब उसके ओठों पर ये शब्द गूंजते होंगे

रेत पर चलते हुये
ये पाँव मेरे
छिल गए हैं ।
किस जगह पर मैं रुकूँ
घर कि या वन ही कहाँ हैं
दूर तक फैली पठारी
रेत के कण
फिर यहाँ हैं,
देख कर मुझको अकेला
सब विपक्षी
मिल गए हैं ।
हो रहा भूकम्प क्षण-क्षण
वृष्टि की संभावना है,
मृत्यु है
और जिंदगी की
दीन स्वर में याचना है,
छत बचे तो किस तरह
जब पाये सारे
हिल गए हैं ।

[कुँअर की यह बेचैनी तिलकी तक पहुँचती भी होगी या नहीं,

नहीं कह सकती लेकिन गीत का जादू मेरे मन को किस तरह बाँध रहा है, क्या कहूँ। तुमने उस दिन एक वनवासी की कहानी कही थी न, उसकी वंशी में वह जादू था कि अंग्रेज अफसर की बेटी तक मुग्ध थीं और जिस सजा के कारण उसे कड़ी सजा मिलनी थी, उससे उसको मुक्ति दिला दी थी—उस अंग्रेज़ अफसर की बेटी ने। तुम्हारे इस गीत को भी जब-जब मैं पढ़ती हूँ, मुझे क्यों लगता है कि वनवासी मेरे सामने बैठकर वंशी टेर रहा है और मैं उन्मत्त हुई जा रही हूँ। लेकिन यह तभी तक होता है, जब तक मेरे हाथ में गिलास होता है। गिलास खाली—मैं खाली। लकिन यह मेरी बात है। यह न विजयमल की बात है और न तिलकी की।

[मैं तो महानगर की कन्या ठहरी और महानगर में दिल वैसा नहीं धड़कता; जैसाकि गाँव या प्रकृति के बीच बसनेवाले लोगों के धड़कते हैं। लोकगीत-लोकगाथा में प्रेम के लिए इतनी-इतनी जगह जो होती है, इसी कारण तो। इसे तो तुम भी स्वीकार करोगी कि आदमी में जब शहर बस जाता है, तो वहाँ चिड़ियों की आवाज नहीं होती, नदियों की कलकलाहट नहीं होती, रितुओं की पुकार नहीं होती, जो कुछ होता है—वह है शोर—पहाड़ों के टूटने-दरकने का, बादल फटने का, और भूख सिर्फ भूख—वह भी अपार धन-दौलत को जमा कर लेने की भूख। तुम्हारा अंगप्रदेश तो नदियों, पहाड़ों, जंगलों का प्रदेश है, जहाँ अब भी बाँसुरी की वहीं गूंज है, जो कभी गोकुल में गूंगती थी। और नहीं है, तो मेरी सखी अर्पिता कैसे यह गीत अब भी लिख पा रही है :

मैं हूँ तुम्हारे साथ
तुम मेरा प्यार लो ।
माना कि तुमसे मैं
दूर, बहुत दूर, वहाँ
सपने भी आ सकते
किसी तरह नहीं जहाँ,

शायद मैं लौट जाऊँ
सुन कर पुकार को
मन से तुम एक बार
अब तो पुकार लो !
मैं भी तो हूँ उदास
एक यहाँ साथी बिन,
रूठे आषाढ़, सौन,
भादो और आश्विन,
अपनी ही बात क्यों
मेरी भी बात सुनो,
बिना दाम सुख जब हो
दुख क्यों उधार लो ।

[तुम्हारे गीतों को जब भी पढ़ती हूँ, तो मुझे यही लगता है—तुम्हीं पूर्व जन्म में तिलकी रही होगी, भले ही तुम्हारे बैंकवाले पति विजयमल नहीं होंगे। विरदी जी ने बिना मिले प्रशंसा कर दी होगी । कैसे तुम निभाए जा रही हो! घंटे भर में मैंने जान लिया कि तुम कविता हो, तो वह कविता के क्रूर आलोचक। आश्चर्य तो मुझे इस बात का लगा कि जब-जब भी मैं तुम्हारे पास गई और जब भी तुम्हारे वो सामने आए; मैंने कभी भी उनके चेहरे पर हँसी नहीं देखी। हाँ, मुझे देखते रहने में कोई कमी नहीं थी लेकिन आँखों में जैसे रेगिस्तान की हवा। मैं नहीं समझती हूँ कि तुम्हारे रचे इन गीतों की कभी प्रशंसा भी उन्होंने की होगी; खैर तुम्हारे गीतों के लिए मैं तुम्हें दाद देती हूँ। कहाँ से मिलती है तुम्हें—ऐसे गीतों के सृजन की प्रेरणा ?

[यही जानने के लिए मैंने उस साक्षात्कार वाली पुस्तक को भी दुहरा गई थी—वही पुस्तक जिसमें तुमने डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी के सवालों का जवाब दिया है। सच कहती हूँ सखी, वह पुस्तक मुझे अधूरी लगी। इसके साथ तुमने जो और दो पुस्तकें दी थीं—एक तो वह

जिसमें रंजन जी के उत्तर हैं और दूसरी वह जिसमें तुम्हारे गुरु डॉ. साहब के उत्तर हैं। दोनों पुस्तकें मैंने निजी लाइब्रेरी में रख ली हैं। श्रेष्ठ पुस्तकें हैं। साहित्य और तुम्हारे शहर के लोगों को जानने के लिए इससे बढिया माध्यम और क्या हो सकता है। पता नहीं, तुमने इन पुस्तकों को पढ़ा भी है या नहीं। इनको पढ़ा होता, तो निर्मोही की तरह मुझे भेंट नहीं कर देती।

[खासकर मैं रंजन जी के उत्तरों के सिलसिले में मैं यह कहना चाहूंगी कि क्यों उस दिन डाक्टर साहब कहने लगे थे कि अंग प्रदेश की मिट्टी में एक विशेष किस्म की संजीवनी है, जो चेतन व्यक्ति को निरंतर सृजन के लिए प्रेरित करती है और जड़ को सींचने के लिए बाध्य । गलत नहीं कहा था। अब यहाँ लौटकर मैं सोचतीं हूँ कि कुछ सालों तक तुम्हारे साथ ही वहाँ मंदार विद्यापीठ में रह जाती, तो अच्छा होता। ऐसी भी क्या हड़बड़ी हो गई थी कि मैं घर लौट आई। वहाँ तुम्हारी जैसी सहेली थी; मनीषी साहित्यकार आनंदशंकर माधवन जी थे। अब सोचती हूँ—जब माधवन जी अकेले अपने आश्रम के बाहर कुसी पर बैठे आकाश-मंदार से बतिया कर दिन ही क्या, रात भी गुजार ले सकते थे, तो मुझे क्या हो गया कि मैं अपना प्रदेश लौटने को बेचैन हो गई! आखिर साहित्यकार माधवन जी भी तो मेरे ही प्रदेश के हैं । उनसे बतिया कर मुझे भी कितना सुख मिलता था और मुझसे अपने प्रदेश की बातें सुनकर वह भी बच्चे की तरह कितना खुश हो जाया करते थे।

[हाँ, वहाँ रहते हुए मुझे प्रो. कृष्ण किंकर सिंह के बारे में ही जानकारी नहीं हो सकी थी; उनके बारे में तो मुझे तुम्हारे घर पर डॉक्टर साहब ने जानकारी दी थी। और जब उनके बारे में वह सब जाना, तो क्या कहूँ, कितनी श्रद्धा से भर गई थी। मुझे आश्चर्य तब हुआ कि मंदार के लोग बस यही जानते हैं कि वह प्रोफेसर हैं; यह नहीं जानते कि शांति निकेतन में रहते हुए वह राहुल सांकृत्यायन, हजारी प्रसाद द्विवेदी, रांगेय राघव के कितने करीब थे। हिन्दी शिक्षक के रूप में वह चीन में रहे। लौटे, तो मंदार विद्यापीठ में शिक्षा देने लगे। सारी बातें मैंने डाक्टर साहब

से सुनी थी । ऋषि ही हैं। अब यहाँ आकर लगता है कि मैंने घर लौटने की हड़बड़ी में स्वर्ग छोड़ दिया।

[हाँ, तुम्हें यह तो बताना भूल ही गई कि उसी मंदार में एक और कवि से मुझे मिलने का अवसर मिला। इनका भी पता मुझे तुम्हारे डॉक्टर से ही मिला था। मिला, तो अभिभूत हो गई। तीन घंटे तक उनसे बातें हुई थीं—उनके घर पर ही, सड़क के किनारे-किनारे बैठे-बैठे। उन्होंने अपनी कविताओं की एक छोटी-सी पुस्तक दी थी। वह शायद तुम्हारे पास ही रह गई। हाँ, मेरी डायरी पर उन्होंने अपनी एक अंगिका कविता मेरे आग्रह पर लिख दी थीं। हिन्दी में अर्थ बताया था। तुम उनकी एक कविता जरूर पढ़ लेना। यह इसिलए कि तुम्हें तिलकी के वियोग की पीड़ा इसमें दिखाई देगी ।

[अर्पिता, तुमने हिन्दी में तो कोई उपन्यास रचा ही नहीं, जो उपन्यास हैं, अंगिका में हैं। इस बार जब लौटूंगी, तो अंगिका अवश्य सीखूंगी। बाप रे, बाप ! उस दिन अंगिका पर बात क्या निकली—दो घंटे तक डॉ. साहब इस पर बोलते ही रहे और अगर उनकी बातों को मैं स्वीकार कर लूं, तो कोई शक नहीं कि कई पूर्वी भाषाओं का जन्म अंगिका से ही हो। नहीं मानने का सवाल भी नहीं। जब डॉ. डोमन साहु समीर जैसे भाषाविद ने इनके तर्क को अकाट्य बताया है, तो फिर बहस करने से क्या फायदा! तुम्हारे नहीं चाहने के बाद भी मैंने डॉ. समीर जी का 'अंगिका-हिन्दी शब्दकोश' ले लिया था—कुँअर विजयमल गाथा को समझने के लिए। इसी शब्दकोश में डॉ. अमरेन्द्र की अर्द्धमागधीवाली बात पर उनका विचार है। कहाँ रहते हैं समीर जी ? डाक्टर साहब ने बताया था हैं गोड्डा के हैं, रहते हैं देवघर में। यह भी बताया था कि अब उनका चलना-फिरना रुक गया है। पता नहीं उनसे मुलाकात हो भी सकेगी या नहीं। अब तुम्हें क्या बताऊँ कि अंगिका के कितने-कितने विद्वानों से मिलने की साध लिए ही यहाँ चली आई हूँ। इनमें महाकवि सुमन सूरो भी हैं, डॉ. तेजनारायण कुशवाहा भी हैं, शंभुनाथ मिस्त्री जी भी हैं और हैं डॉक्टर मृदुला शुक्ला। मृदुला जी के उपन्यास 'हिरनी-बिरनी'

को मैं ट्रेन में ही पढ़ गई थी। गजब का उपन्यास है। इसका तो अंग्रेजी में अनुवाद होना चाहिए।

[क्या दुर्भाग्य है, अर्पिता, हिन्दी की श्रेष्ठ कृतियों को विश्वस्तर पर प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए हमें अंग्रेजी में अनुवाद की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। अभी तो अपने देश में ही हिन्दी को प्रतिष्ठा नहीं मिल पाई है। झूठ क्या कहूँ, खुद हमारे दक्षिण भारत में इसका विरोध हो जाता है। लेकिन इससे तुम यह मत समझना कि आम लोग इसके विरोध में हैं। वे तो हिन्दी बोलते हैं, टूटी-फूटी हिन्दी ही सही, बोलते ही हैं, क्योंकि इससे इनकी रोजी-रोटी चलती है। विरोध करते कुछ मुट्ठी भर अंग्रेजी जाननेवाले लोग। नहीं करेंगे, तो उनकी रोजी-रोटी खतरे में हो आयेगी। लेकिन यह स्थिति अब बदल रही है। मैं तो कहूँगी कि 'हिरनी-बिरनी' का अनुवाद अंग्रेज़ी में ही नहीं, उर्दू में भी हो। तुम्हारे पास डॉ. मनाजिर आशिक हरगानवी जैसे विद्वान तो हैं ही।

[और जब हिरनी बिरनी का कई भाषाओं में अनुवाद होगा—तब अंग प्रदेश में पहाड़ी लड़कियों के मिजाज को भी दुनियावाले समझ सकेंगे। यह तो बहुत अच्छा हुआ कि अंगिका लेकगाथाओं पर आधारित उपन्यास हिन्दी में हैं । अगर ये भी अंगिका में होते, तो सारी संभावनाएं रसातल में होतीं। लो भटक गई न मैं ।

[तो, बात हो रही थी कुँअर विजयमल और राजकुँआरी तिलकी की, जब राजकुँआरी तिलका की बात उठती है, तो मैं समझ नहीं पाती कि राजा धुरमल के पुत्र हिरमल की पत्नी सोनामंती के दुख को ही लोकगायक क्यों भूल जाता है। वह तो तिलकी से अधिक दुखी है।

[विजयमल तो सुरक्षित राजमहल में आ गया है और तिलका भी निश्चिन्त है कि उसका सुहाग सुरक्षित निकल गया है लेकिन सोनामंती का दुख तो सचमुच में असहनीय है। पता नहीं उसके स्वामी किस हाल में हों, जीवित हैं भी या नहीं। कैसे तो उसका दुख उमड़ने-घुमड़ने लगता होगा, यह सोचकर । और तब अचानक ही वह गा उठती होगी :

प्रथम मास अषाढ़ हे सखि साजि चलल जलधार हे ।
एहि प्रति कारन सेतु बान्हल सिया उदेश श्रीराम हे ।।
सावन हे सखि शब्द सुहावन रिमझिम बरसत बून्द हे ।
सबके बलमुआ रामा घरे-घरे ऐलै हमरो॑ बलम परदेश हे ।।
भादो हे सखि रैनि भयावन दूजे अन्हरिया राति हे ।
ठनका जे ठनकै रामा बिजुली जे चमकै से देखि जियरा डराय हे ।।
आसिन हे सखि आस लगाओल आसो ने पुरलै हमार हे ।
आसा जे पूरलै रामा कुवरी सौतिनिया के कत राखल लोभाय हे ।।
कातिक हे सखि पुण्य महीना सखि सब करै गंगा असनान हे ।
सब सखी पहिरै पाट पटम्बर हम धनि गुदरी पुरान हे ।।
अगहन हे सखि हरित सोहावन चहु दिश उपजल धान हे ।
सामा चकेबा रामा खेल करै सखि से देखि जिया हुलसाय हे ।।
पूस हे सखि ओस पड़ि गेल भीजि गेल नामी-नामी केश हे ।
जाड़ छेदै तन सुइ सन छन-छन, थर-थर काँपै करेज हे ।।
माघ हे सखि जाड़ा लगतु है देह थर-थर काँपै हे ।
पिया जे होतिया रामा कोरवा लगैतियौं कटतै जाड़ हमार हे ।।
फागुन हे सखि रंग महीना सब सखि खेलै पिया संग हे ।
से देखि हमरो॑ जियरा तरसै ककरा पर दियै हम रंग हे ।।
चैत हे सखि सब वन फूलै फूलवा जे फूलै गुलाब हे ।
सखि सब फूलै रामा पियाजी के संग में हमरो॑ फूल मलीन हे ।।
बैसाख हे सखि पिया नहि ऐलै विरह लहकत गात हे ।
दिन जे कटै रामा कानतें-कानतें लहकतै बीतै सारी राति हे ।।
जेठ हे सखि ऐलै बलमजी पूरल मन केरो॑ आस हे ।
बाकी हे दिन सखि मंगल गाबथि रैन बितावथि पिया साथ हे ।।

[यह अंगिका बारहमासा भी गजब का है, जहाँ-जहाँ गया उसी का हो गया ।

[खैर, इसी गाथा में एक और नारी पात्र है—राजा धुरमल की पत्नी—मैनावती। आश्चर्य है कि लोकगाथा में इसका नाम भर आया है।

जब विवाहित होकर यह राजकुमारी धुनधुनिया आई होगी, तो उसके आंतरिक व्यक्तित्व का चित्रण होना चाहिए कि नहीं ? लोककवि तो इसके प्रति और भी सावधान रहता हैं। जरूर मैनावती का इसमें रुप-वर्णन भी होगा । राजा धुरमल के संन्यास लेने पर उसके वियोग का भी वर्णन होगा और जब उसे किसी सैनिक से या फिर जैसे भी हो पुत्र और पति के बंदी होने की खबर मिली होगी, तब वह कितनी बेचैन रहती होगी। क्या इन बातों का वर्णन इस लोकगाथा में नहीं होगा ? जरूर होगा। गायकों ने सिर्फ युद्ध-कलह-संबंधी बातों को ही कंठ में लेकर इसे वीर-काव्य बना दिया। क्यों लगता है मुझे कि इसका मूल पाठ अभी भी अप्राप्य है। लेकिन जब तक वह पाठ नहीं मिल जाता है, तो यहाँ रिक्त स्थान के भराव के लिए मैं मैनावती के लिए भी एक गीत यहाँ रख देती हूँ, जो तुम्हारा ही गीत है :

आज मन में बैठ चुपचुप कौन बोल !
बहुत रोया तू हृदय
अब शांत हो तुम !
इस तरह आँसू बहाने से
मिला है क्या किसी को ?
मत जलाओ और जी को !
रात भर जगती रही है पीर,
अब तो सो ले !
आस किसकी ?
राह किसकी ?
जो बिछे हैं नैन
मूक क्यों है बैन ?
अब कहाँ है साथ मन को जो उड़ाए
आज मन किसको टटोले !
एक तरफ जीवन लहरता
एक तरफ आँसू बिछे हैं,

देवता के ये रचे हैं ।
या तो हँस लो खूब जी भर,
या तो जी भर खूब रो ले ।

[अर्पिता, यह जानकर तुम्हें भी आश्चर्य लगेगा कि इस गाथाकाव्य में चार-चार नारी पात्र हैं—मैनावती, सोनामंती, तिलकी और सलखी लेकिन एक भी नारी पात्र को सजाने सँवारने का काम यहाँ नहीं हुआ है। उस सलखी को भी, जो कुँअर विजयमल के प्राणों की रक्षा कर लेती है—अपने प्राणों की बिना परवाह किए। लोकगाथा की एक बहादुर स्त्री पात्र है—सलखी।

[हाँ, वह प्रसंग मन को एकदम छू गया, जब विजयमल बावनगढ़ के लिए सैनिकों के साथ निकलता है और भाभी सोनामंती से कहता है कि आँगन का तुलसी पौधा अगर सूख जाय, तो समझना मेरी मृत्यु हो चुकी है।

[उस प्रसंग को मैं जब भी याद करती हूँ, तो आगे कुछ भी नहीं सोच पाती, कुछ भी नहीं लिख पाती। यह तुम्हारे अंग प्रदेश में ही नहीं, मैं समझती हूँ—पूरे भारत में तुलसी के प्रति यही भावना किसी-न-किसी रूप में वर्त्तमान होगी, लेकिन अंग में तो घर-घर में तुलसी के प्रति एक-सी श्रद्धा देखी और किसको नहीं तुलसी की कहानी मालूम कि विष्णु की प्रिया आँगन में क्यों रह गई—जो विष्णु भगवान को इतने मन से चाहती है ? लेकिन यह तो एक बात हुई। असल बात तो यह है कि जिस घर में तुलसी होती है, वहाँ यमराज नहीं आता, मृत्यु नहीं होती। तब कबूतर, सुग्गा, काग ही नहीं संदेश देते थे, घर-आँगन के पौधे-वृक्ष भी संदेश देने का काम करते थे। वाह। इस लोकगाथा के ऐसे जब भी प्रसंग याद आते हैं, मैं वहीं पर ठहर जाती हूँ। और फिर मैंने कुँअर विजयमल के बारे में खोजबीन ही कितनी की है । मुझे इस वक्त जगप्रिय जी के उपन्यास 'ठूंठ पर चाँद' याद आ रहा है, उसकी एक पात्र है, जो शोध छात्रा है। शोध छात्रा की तो उसी को कहना होगा ।

[तुलना करो तो मेरा काम उसके सामने नहीं के बराबर है, और

मैं उपन्यास लिखने बैठ गई । और लिखने बैठ गई हूँ, तो मन की बातें मैं रोक भी नहीं सकती ।

[अर्पिता, लगता है कि मैं उपन्यास क्या—शोधकार्य भी पूरा नहीं कर सकूंगी । मैं लिख भी नहीं सकूँगी, डेग-डेग पर कुछ सोचने के बाध्य हो जाती हूँ ।अब तुम्हीं सोचो कि कोई राजा या राजकुमार जब किसी देश या राजा पर चढ़ाई के लिए निकलता है, तो क्या अपने पास खाने-पीने का बिना पर्याप्त सामान लिए निकल पड़ता है ? मान लिया कि इस लोकगाथा का राजकमार लड़ाई के अनुभवों से हीन है—बहुत कम उम्र होने के कारण लेकिन राजकुमार के साथ जा रहे सेनापति या सेना तो अनुभवहीन नहीं होंगे। उन्हें तो खाने-पीने का भरपूर सामान ले लेना चाहिए था।

[लोकगाथा में तो यही मिलता है कि राजकुमार सेना के साथ लालपट्टी बाजार पहुँचता है, क्यों कि नदियों, पहाड़ों, जंगलों को पार करते-करते सैनिकों को भूख लग चुकी है, तो लालपट्टी बाजार में हलवाइयों से बातचीत होती है। राजकुमार को लगता है कि मिठाइयों की कीमत हलवाई ज्यादा माँग रहे हैं, तो राजकमार का आदेश पाते ही हलवाइयों पर सैनिक आकमण कर बैठते हैं। यह अच्छा लगता है ? किसी देश की अपनी आर्थिक व्यवस्था होती है, उसे लेकर खीजने की क्या जरूरत ? और जब लूटपाट की खबर वावन गढ के राजा वामनसुआ को मिलती है, तो हिंछला बछरवा जो राजकुँअर का घोड़ा है, राजकुँअर को लेकर बावनगढ़ के सैराघाट तालाब पर पहुँच जाता है।

[मैं साफ-साफ कहती हूँ कि मुझसे आगे कुछ न लिखा जायेगा तुम्हारे आग्रह पर लिखना तो शुरू किया था लेकिन अब पता लग रहा है यह काम सिर्फ तुम्हीं कर सकती हो। मुझे लगता है, जान बूझ कर किसी खोजना तहत तुमने मुझे इस कार्य में फँसा दिया है ।

[उपन्यास लिखने के लिए बहुत अधिक दिमाग के सक्रिय होने से मामला ही गड़बड़ा जाता है और वही हो जा रहा है। लेकिन यह उपन्यास भले न हो पाए, तुम्हारे लिए यह रास्ता जरूर तैयार कर देगा

कि कहाँ-कहाँ तुम्हें रुक कर इसकी कमी को भरना है, अस्वाभाविक को स्वाभाविक बनाना होगा। उपन्यास न लिख सकूँ, यह अलग बात है लेकिन मैं जानती हूँ कि उपन्यास के लिए एक प्रमुख बात यह भी है कि इसके पात्र अगर स्वाभाविक-विश्वसनीय नहीं बन पाए, तो समझो सब व्यर्थ। खैर लोकगाथा में जो आगे की कथा को सुनो!

[और हाँ, यहाँ से तुम यह मानकर चलो कि तिलकी वह तिलकी नहीं है, जिसकी शादी कुँअर विजयमल से छः महीने की उम्र में ही हो गई थी और विजयमल की भी उम्र वह नहीं है जिसे धुनधुनिया पहुँचाने के लिए तिलकी और सलखी ने घोड़े की पीठ से बाँध दिया था। यहाँ से विजयमल बीस वर्ष का युवा है और तिलकी कम-से-कम सोलह वर्ष की युवती।]

(१०)

सैराघाट के नजदीक घोड़े से उतरते ही कुँअर को पहली बार अनुभव हुआ कि बसंत का आगमन हो गया है। और बसंतागमन की अनुभूति तो वियोगिनी तिलकी को और भी हुई होगी । तो वह फिर साँवरी काव्य की साँवरी की तरह वह भी कुहुक गई होगी :

> सुनो काग/आज मैं तुम्हारे सामने/खड़ी हूँ निराश/आशा
> में/वसन्त भी तो आ गया/मैं अपने प्रियतम को/खोजती
> रही रोती हुई/पहले की तरह ही/जैसे कोयल और
> पपीहा/न जाने कितने युगों से/अपने खोये मीत को
> खोजते फिर रहे हैं/ग्यारह मासों तक/तुम निरर्थक ही
> गगलते रहे/न जाने क्या क्या बोलते रहे/और आज
> फिर तुम/छपरी से लेकर अगरी तक/ढहती दीवाल

और आंगन में/उड़-उड़ कर बैठता है/कैसा संदेश उचारता है/क्या कहता है ?/क्या सज-संवर कर/यह जो वसन्त आया है/आम्र मंजरी का मोर पहने/नव पल्लव के परिधान से सजे/दुल्हा बना यह वसन्त नहीं/मेरा ही प्रियतम है/लेकिन कैसे समझ लूँ/कि यह मेरा ही प्रियतम है/हो ही नहीं सकता है यह/मेरा प्रियतम/अगर होता/तो दौड़ कर मुझे/अंग से लगा लिया होता/यह निर्मोही वसन्त है/मैं सब जानती हूँ/धरती को/हरिहर चुनरी पहना कर/कई तरह के फूलों से सजा कर/मोहक शृंगार रचा कर/मुग्धा बना कर/और फिर इसे/भरी जवानी में ही/छोड़ कर चले जाने वाला वसन्त ।/बोलो कागा/यह कही मेरा ही/प्रियतम तो नहीं/कहीं तुम ठीक ही तो नहीं कह रहे हो काग/ओ मेरे जीवन धन/तुम्हीं आकर बताओ/यह जो कोयल कूकती है दिन-रात/आम्रवृक्ष की डालियों में/छिप-छिप कर/क्या यह/मेरी ही टीसती बोली है/मेरी ही कुहरन है/जिसे अब तुम सुनते रहोगे/धरती के होने तक ।/प्रियतम/देखो न/आम्रवृक्षों में टिकोले/पहले की तरह ही आये हैं/बच्चे सब अंधाधुंध ढेले/सी तरह चला रहे हैं/जैसा कि हमदोनों चलाते थे/और खाते थे टिकोले/दाँतों से काट-काट कर/एक-दूसरे से छीनते हुए/हवा-बतास के भय से मुक्त/दौड़ते थे/दोपहर की धूप में/वृक्षों के नीचे-नीचे ।/प्रियतम/आज यह देख कर/बीते दिनों के लिए तरसती हूँ ।/कागा क्या कहता है/गगल-गगल कर/क्या/गाँव के द्वार-द्वार पर/रात-रात भर/होरी बानों का यह गीत/'पिया बेदर्दी नै ऐलै सुन फागुन में/अरे सगरे.....'/सुनो कागा/मुझे तो आश्चर्य होता है/कि ये होरी बानों/मेरी बात को कैसे जान

गये/अब तक तो किसी से/मैंने कहा भी कुछ नहीं/तो फिर इन सबों ने/जान कैसे लिया/अगर नहीं जानता है/तो कैसे गाते हैं/मेरे प्रियतम का मुझसे/रूठ कर जाने की बात/इतने जोर जोर से/शोर मचाते/आखिर क्यों गाते हैं ये ?/सुनो प्रियतम/जब हर कोई जान ही गया है/तो आओ मेरे पास/अब डर कर ही क्या होगा/इस वसन्त में/छुप-छुप कर क्या आना/काँव-काँव-काँव/अब किसका सगुन उचारते हो/अय कागा/तुम्हारे ही कहने पर/मैंने कितने साल/बारहो महीने/ऋतु-ऋतु में खोजा है/अपने प्रियतम को/सच ही कहती हूँ/सुनो कागा/अब जो आऊँ/तुम्हारे कहने पर/क्यों लौट कर आऊँगी/लौट कर जा रही हूँ/जीवन काट लूँगी/ऐसे ही/सूखी चन्दन नदी की तरह/लेकिन सुनो/सूख जाने पर भी/नदी तो नदी ही है/पानी तो/आता है/जाता है ।

[अर्पिता, तुम्हें इस काव्य के कवि अनिरुद्ध प्रसद विमल से मिलवाना चाहिए था । खैर छोड़ो इस प्रसंग को ।]

(११)

वसंत का समय था और ऐसे ही समय में विजयमल ने दूर से ही कमर पर कलश रखे कुछ युवतियों को आते देखा, उसे यह समझते देर नहीं लगी कि सभी युवतियाँ तिलकी की ही सेविकाएं होंगी जो उसके लिए पानी लेने के लिए सरोवर पर आ रही हैं।

फिर क्या था उसने अपनी झोली से भेष बदलने के सामानों को निकाला, जो वह अपने साथ ले आया था।

उसने अपने सिरस्त्राण को अपने झोले में डाला था और सर से गले तक को केशवाले मुखौटे से इस तरह स्वयं को ढक लिया कि वह साधु ही लगने लगा था। शरीर पर जल्दी से कंथा डाला और लपक कर सरोवर के चारो ओर की सीड़ियों पर अपने सामानों को रख आया। एक दिशा की सीड़ी पर खड़ाऊँ, तो दूसरी दिशा की सीड़ी पर त्रिशूल और तीसरी दिशा की सीडी पर अपना कमंडल और चौथी दिशा की सीड़ी पर स्वयं जम गया। अब उसके कानों में उन युवतियों का समूहगीत छन-छन कर आने लगा था :

फिर मिलें या न मिलें
तुम आज मिल लो,
दो कदम ही साथ चल लो !

कुछ कहाँ है थिर यहाँ
आया नहीं कि चल गया,
कुछ पता चलता नहीं
कब दिन उगा और ढल गया
रेत पर आँधी-हवाओं में
है बहुत मुश्किल बहल लो !

प्राण की गति हो रही है शांत
क्यों न इसकी धार गंगा से मिला दें
आओ, मेरे मित्र ! जंगल से निकल कर
रेत पर एक फूल सुंदर-सा खिला दें
पहले अपने हाथों में तुम आज
प्रेमपूरित मेरे प्राणों का कमल लो !

बस बाँस भर की दूरी रह गई थी, तो विजयमल ने आँखें बंद

कर लीं और कुछ इस तरह से बुदबुदाने लगा; जैसे वह स्नान के बाद ध्यान में लगा हुआ हो।

सरोवर के किनारे जब सभी युवतियाँ पहुँची, तो अचानक ही उनके स्वर बंद हो गये। वे समझ ही नहीं पा रही थीं कि आखिर यह साधु पूरब की ओर मुँह किए सीड़ी पर क्या कर रहा है ? उन्होंने सोचा कि चलो कोई बात नहीं, साधु ही तो है, दूसरे किनारे से पानी ले लेते हैं।

लेकिन उन्होंने जब देखा कि सभी किनारों पर साधू के कुछ-न-कुछ सामान रखे हुए हैं, तो वे सभी चौंकी। सोचने लगीं—कोई छल तो नहीं होनेवाला ?

भयभीत होना स्वाभाविक था; इसी से खाली कलश के साथ लौटने की बात सोचने लगीं। लेकिन उधर राजकुमारी से भी कुछ सुनने का भय था। यही सोचकर एक किनारे से पानी लेकर ही जाने की बात ठानी और जैसे ही वे एक साथ आगे बढ़ीं कि साधु भेष में विजयमल ने कहा, ''कन्याआ ! यह क्या करने पर उतारू हो ? देखती नहीं कि इस समय मैं साधना में तिरत हूँ और तुम्हारे द्वारा कलश में पानी भरने से जो आवाजें होंगी, उससे मेरी साधना में विघ्न उपस्थित होगा और इसका परिणाम बुरा ही होगा।''

यह सुनते ही सभी युवतियाँ खाली कलशों के साथ तिलकी के पास पहुँच गईं और कहने लगीं, ''राजकुमारी जी, सैरा तालाब पर एक साधु आ बैठे हैं।

''हाँ राजकुमारी जी, और सरोवर की सभी दिशाओं की सीड़ियों पर अपने सामानों को रख छोड़ा है, कहीं कमंडल, कहीं खड़ाऊँ और कहीं त्रिशूल। एक ओर तो स्वयं बैठे हुए हैं। दूसरी सेविका ने कहा था

''जब पानी लेने हमलोग आगे बढ़े, तो कहने लगे—परिणाम बुरा हो सकता है, देखती नहीं, मैं ध्यान में हूँ!'' तीसरी सेविका ने कहा था ।

''अरे तुमलोगों को डरना नहीं था। यह सैरा सरोवर सिर्फ

तिलकी के लिए बना है, और वहाँ मेरे आदेश के बिना कोई प्रवेश भी नहीं कर सकता। फिर साधु का वहाँ आना संभव कैसे हुआ ?'' तिलकी ने कहा।

''मुझे तो उनके साधु होने पर भी शंका है !''

''वह कैसे ?'' तिलकी ने पूछा था ।

''देखिए राजकुमारी जी, साधु के केश, दाढ़ी, मूँछ के बाल तो एकदम सफेद थे लकिन चेहरे पर झुर्रियां कहीं भी नहीं थीं। पूछ लीजिए -क्या किसी ने देखी ?'' पहली सेविका ने कहा था ।

''विलकुल नहीं।'' सभी सेविकाओं ने एक साथ कहा था।

''हो सकता है कि उन्हें सिद्धियाँ प्राप्त हो और उसी के बल पर उन्होंने अपने को युवा बना रखा हो।'' तिलकी ने कहा था।

''यह भी हो सकता है, क्योंकि उनके चेहरे पर वह चमक थी जो आज तक मैंने किसी साधु के चेहरे पर नहीं देखी है।'' दूसरी सेविका ने कहा था।

''फिर भी तुमलोगों को पानी लेकर आना था।''

''कैसे लेकर आती राजकमारी; क्या आप को धर्मराज और युधिष्ठिर की कथा मालूम नहीं ? अगर साधु के वचन के विरुद्ध हमलोग जाते और हम पाँचों की जान चली जाती, तब ?'' तीसरी सेविका बोली?

''नहीं जायेगी। हो सकता है वह साधु नहीं हो और व्यर्थ ही तुमलोगों को परेशान करने के लिए साधु के भेष में काई और वहाँ पहुँच गया हो।'' तिलकी ने कहा था ।

''संभव है । तो, हमलोग फिर सैरा की ओर चलते हैं।'' यह कहकर सभी युवतियां फिर सरोवर की ओर निकल गईं। इस बार किसी के ओठ पर कोई गीत नहीं था।

सरोवर पर साधु की ओर इस बार नजरें भी नहीं कीं और पानी भरकर लौटने लगीं कि एक साथ सभी के कंचन कलशों पर एक साथ एक-एक तीर आ धंसे। देखते-ही-देखते सभी कलशों से पानी बाहर।

भीगी युवतियाँ जब राजकुमारी के पास पहुँची, तो राजकमारी भी परेशान। कारण पूछा, तो सभी ने एक साथ एक ही बात कही। सारी बातें सुनकर राजकुमारी तिलकी ने अपनी प्यारी सखी सलखी को बुलाया और सारी बातें बताईं, मन की शकाएं भी जताईं। बहुत देर चुप रहने के बाद उसने सलखी को कहा, ''मैं स्वयं सैरा सरोवर जाना चाहती हूँ। तुम मेरे साथ चलो।''

और दोनों सैरा सरोवर पर पहुँच गईं। तिलकी ने देखा कि उनकी रखवालियों ने जो कुछ भी बताया था, बिलकुल सही था। कहीं खड़ाऊँ, कहीं त्रिशूल, तो कहीं कमंडल ।

तिलकी ने साधु के आगे हाथों को जोड़ा था, सर को झुकाया था और ऐसा ही सलखी ने भी किया था।

साधु ने आशीष की मुद्रा में हँसते हुए अपने दायें हाथ को ऊपर किया ।

तभी सलखी की नजर दस बाँस की दूरी पर बंधे हिंछला बघरवा घोड़े पर पड़ी, जो एक घने वृक्ष की ओट में खड़ा था। फिर क्या था, सलखी ने बड़े गौर से उस साधु के चेहरे को देखा और उसे यह समझते देर न लगी कि यह कोई साधु-वाधु नहीं—साधु के भेष में कुँअर विजयमल ही है, जो राजकुमारी से मिलने इस भेष में यहाँ तक चला आया है। यह सोचते ही वह सरोवर से हटकर एक पेड़ की छाया में बैठ गई।

अब साधु और तिलकी के बीच कोई नहीं था। एकांत को देखते हुए तिलकी ने पूछा कि मुझे सच-सच कहें कि आप हैं कौन, क्यों कि एक साधु का व्यवहार वैसा बिलकुल नहीं हो सकता जो आपने मेरी परिचारिकाओं के साथ किया है। मुझे विवश होकर यहाँ आना पड़ा। विजयमल, तो न जाने कबसे सच्चाई बताने के लिए बेकल था, लेकिन सच वह सिर्फ राजकुमारी तिलकी को ही बता सकता था, इसीसे अपनी शंकाओं को दूर करने के ख्याल से पूछा, ''क्या आप बावन गढ़ की राजकुमारी हैं ? आप के स्वर में जो शालीनता है और आप का जो

भेष-भूषा है—वह किसी राजकुमारी का ही हो सकता है।''

और पूरी तरह आश्वस्त होने पर कुँअर विजयमेल ने अपने सर से साधु का आवरण हटा लिया था। कंथा उतार कर फेंक दिया था। अब तिलकी के सामने युवक राजकुमार विजयमल था। तिलकी तो जैसे अवाक और वृक्ष की छाया में बैठी सलखी ने जब यह देखा, तो मुँह पर हाथ रखकर बोल उठी, ''सौभाग्य के दिन लौट आए।''

तिलकी को भी उसे पहचानते देर न लगी थी। झठ राजकुमार के चरणों पर झुक गई, तो गजकुमार ने उसे उठाते हुए कहा था, ''घबड़ाओ नहीं, हमलोग जल्द ही धुनघुतिया लौट जायेंगे।''

''लेकिन कब ?''

''जबतक कि हम अपने पिता, भाई और संगे-संबंधियों को बंदीगृह से मुक्त नहीं करा लेते—तब तक तुम्हें प्रतीक्षा करनी होगी।''

''लेकिन यह किसी भी तरह संभव नहीं।''

''ऐसा क्यों कह रही हो ?''

''क्योंकि स्वामी के पिता अपने पुत्र और सगे संबंधियों के साथ ऐसे कैदखाने में बंदी हैं, जहाँ किसी तरह भी नहीं पहुँचा जा सकता है।''

''आखिर वह कैदखाना है कहाँ—मैं तुमसे कहता हूँ—अगर वह कैदखाना पाताललोक में भी होगा, तो भी मैं वहाँ पहुंचकर अपने पिता, भाई और बांधवों को छुड़ा लाऊँगा। इसे तुम एकदम सही मानो।''

तिलकी ने देखा कि कुँअर विजयमल के चेहरे पर दृढ़ता की रेखाएं तन गई हैं, तो उसने कहना शुरू किया, ''गंगा और एक लंबे पहाड़ के बीच बावन बीघे का एक स्थान है, जो चारो ओर से जंगलों से घिरा है, उस स्थान को ही मेरे भाई ने कैदखाना बना रखा है, जिसकी रखवाली बावन हजार सैनिक करते हैं और जिसके दरवाजे पर बावन सेर का ताला लटका रहता है। उस कैदखाने में किसी का भी प्रवेश नहीं हो सकता, चाहे वह जितना भी शक्तिशाली हो, क्योंकि उसकी रखवाली मुंडे खां सेनापति करता है, जो बावन सौ सैनिक की ताकत अकेले

रखता है। फिर उसकी सहायता के लिए टुण्डी राकसिन भी हमेशा साथ लगी रहती है। यह तो एक बात हुई। सबसे बड़ी बात है कि उस कैदखाने के चारो ओर बहनेवाली नदी में ऐसा मंत्र भर दिया गया है कि काई उसे पार करना चाहे, तो उससे आग उठने लगेगी और इस तरह तैराक की मृत्यु निश्चित है।''

''लेकिन कोई तो मार्ग होगा—बंदीगृह तक पहुँचने के लिए। कोई तो वहाँ जाता ही होगा ?''

''हाँ, एक धोबिन है जो कैदियों के वस्त्र लाने-पहुँचाने के लिए नियुक्त है।''

''तो, मेरे लिए यही काफी है। मैं उस धोबिन से मिलता हूं। तुम अपनी सहेली के साथ महल जा सकतीं हो।''

[अर्पिता, मुझे भी इस बंदीगृह के बारे में जानने की उत्सुकता थी और इसी सिलसिले में मैं पं. अवधभूषण मिश्र जी से मिल आई थी। किसी ने बताया था कि मुंगेर के किला को वह जरासंध का किला मानते हैं और मजे की बात यह कि इतिहासकार ज्योतिषचंद्र शर्मा इसे जरासंध द्वारा बनवाया गया बंदीगृह। वैसे शर्मा जी गंगा और पहाड़ के बीच की फैली-खुली जगह को ही महाभारतकालीन कैदखाना मानते हैं। अगर यह सही ह, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं कि पर्वतगढ पर बावन गढ़ भी इसी के आस-पास हो और गंगा तथा पहाड़ के बीच का भूभाग को ही बावन सुआ ने धुरमल सहित लोगों को बंदी बनाने के लिए चुना हो। वैसे इसे मेरा अनुमान भर समझो। जब मैं डाक्टर मृदुला शुक्ला का उपन्यास 'हिरनी-बिरनी' पढ़ रही थी और यह जाना कि ये दोनों पहाड़ी युवतियां पूर्वी भागलपुर से बाँका होते हुए तारापुर पहुँची थीं तब कुँअर विजयमल भी अपने पिता-भाई की खोज में वहां पहुँच गया हो, तो आश्चर्य क्या ? मुझे तो लगता है, मुंगेर की इसी पहाड़ी पर वह सरोवर भी होगा जिसका उल्लेख इस गाथा में आया है।

[तो कुँअर विजयमल सबसे पहिले धोबिन के पास ही पहुंचता है। यहाँ एक बात बहुत विचारणीय है कि बिहुला-विषहरी गाथा में भी एक धोबिन है जो बिहुला की मौसी बनकर उसका रुहयोग करती है और इस लोकगाथा की धोबिन भी विजयमल को नदी पार करने की बात बताती है और बताती है कि वह नदी कहाँ पर है ? जंगल कहाँ पर है ? किस दिशा में ताला लटका हुआ है और कहाँ पर मुंडे खाँ मिलेगा ?

[बात सिर्फ धोबी की ही नहीं है, इस लोकगाथा में भी टुंडी राकसिन है। यही राकसिन बिहुला विषहरी में भी दिखाई पड़ती है। मैं सोचती हूँ कि इन दोनों लोकगाथाओं में इस निकटता का कुछ रहस्य है अथवा यह संयोग भीं हो सकता है।]

(१२)

तिलकी से अलग होकर वह बंदीगृह तक पहुँच जाता है । देखता है—करधनी के आकार की नदी। एकदम शांत; जैसे, बर्फ जमी हुई हो, लेकिन जैसे ही कुँअर उस पार करना चाहता है उसमें लहरें उठने लगती हैं—आग की लहरें और वह पीछे मुड़ जाता है।

वह कुछ निराश-सा दिखता है लेकिन तभी उसे अपने हिंछला घोड़े की याद आती है—वह तो एक ताड़ की ऊँचाई तक को लाँघ सकता है और होता भी वही है। हिंछला पर विजयमल के बैठने भर की देर थ कि घोड़ा एक ही छलांग में नदी पार कर गया। नदी में आग की लहरें उठी भी और शांत भी हो गईं।

अब कुँअर घने जंगल से बने कैदखाने के समक्ष था। चारो तरह वृक्ष-ही-वृक्ष। आपस में इस तरह गुँथे हुये कि हवा को भी अंदर जाना

मुश्किल। वह कैसे देख पाता कि वृक्षों की दीवार के पीछे क्या है ? कौन कैद है ? कि उसकी नजर तभी बावन सेर के ताले पर पड़ी और वह उसी ओर लपका। उसका उस ओर कदम बढ़ाने भर की देर थी कि टुण्डी राकसिन सामने आ गई, न जाने कहाँ छिप कर बैठी थ।

[अर्पिता, सोचो जब वह सामने आई होगी, तो ऐसा भी नहीं कि कुँअर विजयमल भयभीत नहीं हुआ होगा। वह सामान्य औरत तो होगी नहीं। विकटता और ताकत, दोनों ही उसके साथ होगी, तभी तो वह राक्षसिन थी। लोकगाथा में तो यही वर्णित है कि कुँअर ने अपनी तलवार से उसे दो टुकड़े में विभाजित कर दिया—इसके पहले कि वह कुँअर को अपना शिकार बना ले। यह लोकगायक की जल्दीबाजी का परिणाम है। मुझे तो लगता है कि यहाँ भी कुंवर ने वही चतुराई की होगी, जो बिहुला ने उस टुंडी के साथ किया था; यानी मौसी-वौसी का रिस्ता जोड़ा होगा और फिर आगे का काम आसान कर लिया होगा। इसके साथ मेरे दिमाग में एक और बात आ रही है कि टुंडी कोई विशेष औरत नहीं होगी। यह शायद कोई जाति हो और उस जाति की सभी औरतें टुंडी कहलाती हों। तभी तो बिहुला-विषहरी में भी टुंडी है और विजयमल में भी। तो इस टुंडी को जब कुँअर ने किसी तरह अपने पक्ष में कर लिया होगा, तब टुंडी ने उस पठान के बारे में भी बता दिया होगा, जो जंगल वाले कैदखाने में बंद कैदियों की देखरेख में लगाया गया था।

[अब देखो उस सेनापति का नाम भी कितना भयानक है—मुंडे खां। सामान्य आदमी तो इसका यही अर्थ लगायेगा—जो आदमी के सर को खा जाए! लोकगाथा में यह नाम सिर्फ विकरालता को जाहिर करने के लिए दिया गया है। तो, उस विकराल सेनापति को जैसे ही उसके आने की भनक मिलती है, वह सेना को तैयार करने निकल पड़ता है—क्योंकि उसे मालूम है—राजकुमार जब इतने बड़े काम को करने निकला है, तो अकेले आया नहीं होगा—सेना के साथ ही आया होगा। भले ही उसने सेना को कहीं और रख दिया हो या फिर किसी और भेष

में ही बने रहने को कह दिया हो। यह तो मुंडे खां को भी पता था—जो लालपट्टी बाजार में कुँअर के लोगों ने उत्पात मचाया था और सच्चाई भी यही थी।]

कुँअर ने सैराघाट के आसपास एक नये बाजार को ही स्थापित कर दिया था। बाजार में उन लोहारों को बुलवा लिया था जो तलवार और अन्य हथियार बनाने में कुशल थे। अब कुँअर के लोगों के पास काफी मात्रा में हथियार थे।

यह जानते ही कि सेनापति मुंडे खां को उसके यहाँ होने की भनक मिल गई है, वह वहाँ से निकल पड़ा। सैनिकों को सतर्क होने का आदेश दिया और स्वयं सेनापति की भूमिका में आ गया।

युद्ध तो घमासान होना ही था। मुंडे खां की बुद्धिमानी काम नहीं आई। उसने सोचा था—कुँअर के सारे सैनिक सैराघाट के आसपास ही मिल जायेंगे लेकिन उसे क्या मालूम था कि कुँअर ने अपने सैनिकों को चारो दिशाओं में फैला रखा है और मुंडे खां जैसे ही अपने बावन हजार सैनिकों को लेकर वहाँ पहुँचा, तो कुंअर के सैनिकों ने उन्हें चारो ओर से घेर लिया। परिणाम वही हुआ, जो होना था। मुंडे खां की सेना पराजीत होकर भाग खड़ी हुई। स्वयं मुंडे खां क्षत-विक्षत होकर वहीं पर गिर पड़ा और यह सब होना था कि कुँअर अपने सैनिकों को लेकर कैदखाने की ओर चल पड़ा।

नदी पार किया, क्योंकि अब उसमें आग की लहरें नहीं उठ रही थीं। टुंडी ने अपना जादू बंद कर लिया था।

अब अपने सैनिकों के साथ कुँअर कैदखाने के बाहर था।

[अर्पिता, मुझे लोकगाथा की यह बात पचती नहीं कि अकेले कुँअर ने सारे वृक्षों को अपनी तलवार से काट डाला। हाँ, उसके सैनिकों ने जंगल को काटना शुरू कर दिया होगा, तो देखा होगा कि कैदखाने का खुला स्थान सामने है। पहले तो कुँअर को ऐसा ही लगा होगा कि काले पत्थरों

की हजारो मूर्तियाँ, जो बेडियों से बंधी हैं, किसी जादू के कारण हिलडुल रही हैं।]

(१३)

आश्चर्यचकित सैनिकों ने करीब आकर देखा, तो जाना वे मूर्तियाँ नहीं, धूल-धुसरित आदमी ही थे, जिनके हाथ-पाँव बेडियों में जकड़े हुए थे। देखते-ही-देखते बेड़ियाँ खुलने लगीं। लंबे-लंबे बालों के कारण उन्हें पहचानना मुश्किल हो रहा था।

बेड़ियों से मुक्त होकर सबने उस शांत हो गई नदी में स्नान किया और धोबिन द्वारा पहुँचाये गये वस्त्रों को धारण किया और समूह में ही सैराघाट की ओर चल पड़े ।

[हालांकि इस लोकगाथा के दूसरे पाठ में कुछ इस तरह की कहानी मिलती है कि कुँअर के पिता, सगे-संबंधी सैराघाट में तीन महीने तक रुके रहे। वहाँ खाने-पीने के सामानों के साथ औजार बनाने की दुकानें सज गई थीं। सालों बाद भी वे लोग मौज-मस्ती मनाने में ऐसे रमे कि वे यह भी भूल गये कि वे सुरक्षित इलाके में नहीं हैं; कभी भी बावनसुआ के सैनिक उन सब पर आक्रमण कर सकते हैं और वही होता भी है।]

लेकिन सारे भावी संकटों के प्रति तिलकी राजमहल में सावधान थी। जैसे ही भाई माणिक चंद के षड़यंत्र के बारे में जानकारी उसे मिली, उसने सखी सलखी को बुलाया और कहने लगी—

''सलखीं, अभी तुम्हें सैराघाट की ओर चुपके से निकल जाना

है।''

''क्यों, ऐसा क्या हो गया है, राजकुमारी ?''

''कुछ समाचार ही ऐसा है।''

''लेकिन क्यों?''

''कल कुँअर के लोगों पर मुंडे खां अपने सैनिकों के साथ आक्रमण करेगा, इस कारण कुँवर का वहाँ से निकल जाना ही अच्छा रहेगा।''

तिलकी बहुत बेचैन दिख रही थी और उसकी बातें सुनकर सलखी भी उतनी हीं परेशान हो उठी। उसने अपने कपड़े बदले—कुछ इस तरह कि वह राजमहल का मात्र एक प्रहरी दिख सके और राजमहल से सीधे बाहर निकल गई।

राजमार्ग से बिलकुल अलग उसने एक सूनी-सी राह पकड़ी और सैराघाट की ओर सरपट निकलती चली गई। कुछ इस तरह कि उसकी पदचाप पाँवों को भी सुनाई न दे। देखते-ही-देखते वह सैराघाट पहुँच गई और सीधे कुँअर के पास पहुंच गई। किसी को भान भी नहीं हुआ कि वह पुरुष नहीं, औरत है लेकिन कुँवर ने उसे देखते ही पहचान लिया।

''क्या मेरे लिए कोई समाचार भेजा है राजकमारी ने ?''

''जी!''

''वह क्या है ।''

''कल मुंडे खाँ अपने सैनिकों के साथ आप सबों पर आक्रमण करने वाला है।''

''कोई बात नहीं। समाचार मिल गया, तो और भी सावधान रहूँगा। तुम राजमहल लौट जाओ और राजकुमारी से कहो कि वह अपना ख्याल रखे। बस कुछ दिनों की बात है। हमलोग अपने देस को जल्द ही लौट चलेंगे।''

[लेकिन यह गलत भी नहीं लगता—वह आज का युद्ध है क्या कि एक सर्वनाशी बम गिरा दिया और दुश्मन समाप्त। सच तो यही है कि बम

गिरने के बाद भी युद्ध खत्म नहीं होता; सालो-साल अप्रत्यक्ष युद्ध चलता रहता है। पुराने जमाने में तो यही होता था कि एक जयी, दूसरा पराजित और फिर सब कुछ शांत।]

मुंडे खां का दूसरे ही दिन आक्रमण हो गया था, बावन हजार सैनिकों के साथ । किसी-किसी गायक के अनुसार पच्चीस हजार सैनिकों के साथ और फिर पहले से तैयार कुँअर के सैनिकों ने मुंडे खां के सैनिकों को वह मजा चखाया कि उल्लेख करना मुश्किल।

यह देख क्रोध में आकर मुंडे खां ने कुँअर विजयमल पर ही अपनी तलवार चला दी लेकिन उसे क्या पता था कि चेतक की तरह सावधान हिंछला बछरवा ने लपक कर उसकी ततवार अपने मुँह में ले ली और उसको इस तरह हवा में उछाल दिया कि वह सीधे बावनसुआ के महल में जा गिरी। माणिक चंद ने तलवार देखी, तो उसे सब बातें समझते देर न लगी।

माणिक चंद को समझते यह भी देर नहीं लगी कि अगर विजयमल मुंडे खां जैसे बहादुर सेनापति को पराजित कर सकता है तो उसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। वह सारे संकटों को पार करते राजमहल में भी आयेगा और निश्चित आयेगा क्यों कि तिलकी अभी यहीं है। वह किसी भी क्षण उसके शयन-कक्ष में प्रवेश करना चाहेगा ताकि इसे लेकर राजमहल से बाहर निकल सके और इस कार्य में उसका घोड़ा मददगार सिद्ध होगा, इसमें भी कोई शक नहीं।

तो, इसके पहले ही विजयमल को कैद कर लेने की व्यवस्था कर चाहिए—माणिकचंद ने मन-ही-मन सोचा था और राजमहल के बाहर बचे सैनिकों को वह सावधान करने के लिए बाहर निकलने ही वाला था कि उसके सामने कुँअर विजयमल महल की छत से कूद पड़ा। अभी माणिक चंद ठीक से संभल ही पाता कि विजयमल ने अपनी तलवार से उसकी तलवार को कमर से नीचे गिरा दी और कहा, ''तलवार उठाने

की सारी कोशिशें बेकार होंगी। यहाँ तक कि किसी को सहायता के लिए आवाज देना जीवन के लिए खतरनाक सिद्ध होगा। मैंने इस महल के चारो ओर अपने सैनिकों को लगा दिया है।''

एक बार तो माणिक चंद को यही लगा कि विजयमल झूठ ही बोल कर उसे भयभीत कर रहा है। भला इतने बड़े क्षेत्र में फैले महल को यह अपने बचे सैनिकों से कैसे घेर सकता है! लेकिन प्राणों का मोह सही निर्णय और सोच पर अंकुश ही लगाए रहता है। उसने भी यही सोचा कि हो सकता है—मेरे हारे हुए सैनिक ही विजयमल के साथ हो गये हों!

माणिक चंद ने मुड़कर देखा—उसका पिता बावनसुआ मूक बना-सा जैसे एकदम ज्ञानशून्य बना था। बस संकेत से इतना ही कहा था—अभी प्राणों की रक्षा ही सबसे महत्वपूर्ण बात है, जिसे समझते हुए ही कुँअर विजयमल ने कहा, ''मैं यहाँ किसी को न तो मारने आया हूँ, न बंदी बनाने; मैं तो अपनी पत्नी को लेने यहाँ आ गया हूँ और उसे लेकर निकल भी रहा हूँ। बस मैं इतना ही चाहूँगा कि आपसब मुझे बंदी बनाने की कोशिश में कोई हरकत न करेंगे कि मेरे सैनिकों को यह नगर ही उजाड़ कर जाना पड़े और फिर आप के प्राणों की रक्षा ही कैसे संभव होगी।''

कुँअर विजयमल की बातों ने माणिकचंद और बावनसुआ को एकदम भयभीत कर दिया था और उसके सामने ही कुँअर विजयमल ने तिलकी के शयनकक्ष में प्रवेश किया। प्रवेश किया, तो बाहर ही नहीं निकला। निकलता कहाँ से! वह तो अपने हिंछला बघरवा घोड़े की पीठपर राजकमारी तिलकी के साथ कब का सैराघाट की ओर निकल गया था। सारी व्यववस्था तिलकी की सखी सलखी ने समय पर कर रखी थी।

माणिक चंद और बावनसुआ ने घोडे की टापें सुनीं तो होंगी ही लेकिन भय ने दोनों को ऐसा बांध दिया था कि वे हिलडुल भी नहीं सके और जब भय से मुक्त हुये, तो कुंवर विजयमल अपने पिता-भाई, अपने

बांधवों के साथ तिलकी को लिए कब का अपना मुलुक पहुँच गया था।

[अर्पिता, लोकगाथा की कथा तो इतनी ही है लेकिन इस कथा को यही पर छोड़ देना ठीक नहीं होगा । क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि माणिक चंद या बावनसुआ को इस षढ़यंत्र में सलखी पर शंका नहीं हुई होगी? हुई होगी, तो उसे छोड नही दिया होगा। क्या किया होगा इनदोनों ने—उस बेचारी के साथ । उस समय तो जीते जी जला देने की प्रथा प्रचलित थी। आज भी नहीं है क्या ? रोज तो अखबार में पढ़ने को मिल जाती हैं, ऐसी घटनाएं।

[पता नहीं क्यों सलखीं की बात सोचकर मन बहुत बेचैन हुये जा रहा है। ऐसे में मैं तुम्हारे साथ होती, तो निकल जाती भावना हॉटल की ओर। ठीक जगह पर है। इस बार भागलपुर आई, तो उसी हॉटेल में ठहरूंगी और तिलकी के साथ-साथ सलखी पर भी बहुत कुछ लिखूंगी। मुझे उन्हीं दोनों पर लिखना है! कुंअर विजयमल पर तुम और कुछ जोड़ सको, तो ठीक। नहीं तो इसे इसी जगह समाप्त समझो—इस खाली गिलास और खाली बियर बोतल की तरह।

(१४)

[अर्पिता, तुमने जितनी भी पुस्तकें भेंट में दीं, उनमें एक भी ऐसी पुस्तक नहीं जो अनपढ़ी रह गई हो, लेकिन तुमसे सवालोंवाली पुस्तक को तो बड़े मनोयोग से पढ़ा है ताकि तुमको कुछ और ज्यादा समझ सकूँ। इसी पुस्तक में एक प्रश्न कि आपका पसंदीदा उपन्यासकार कौन है के उत्तर में कि ''तुम्हारा यह कहना सबसे पहले मैं यह बता दूँ कि बड़े उपन्यास को पढ़ने का साहस मुझमें नहीं है। मैंने गोदान को तब भी नहीं पढ़ा था,

जब मैं हिन्दी से एम0ए0 की परीक्षा देनेवाली थी। दुर्भाग्य कहिए कि भागलपुर में भयंकर दंगा फूट पड़ा, यह बात 1989 की है और मैं परीक्षा देने नहीं जा सकी। अगर जाती, तो पता नहीं, गोदान के प्रश्नों का क्या उत्तर देती। इधर रंजन जी का एक बहुत लोकप्रिय उपन्यास आया, जिसका शीर्षक है 'कुंवर नटुआदयाल' उसे भी पढ़ने की कोशिश की लेकिन पढ़ ना सकी, दरअसल बहुत गंभीर उपन्यास को पढ़ना मेरे लिए मुश्किल ही है, लेकिन छोटे-छोटे उपन्यासों को पढ़ना मेरे लिए बहुत आसान है और प्रिय भी। यही कारण है कि मैंने अनिरूद्ध प्रसाद विमल का उपन्यास 'लचिका रानी' ही नहीं पढ़ा है, बल्कि चन्द्रप्रकाश जगप्रिय का 'बृजाभार' भी पढ़ा है। इन दोनों उपन्यासों में निःसंदेह जगप्रिय जी का उपन्यास बहुत अधिक प्रिय लगा है। अपनी प्रतिभा से उपन्यासकार ने बृजाभार की कथा को जो वैज्ञानिकता और विश्वसनीयता प्रदान की है, उससे मन रोमांचित हो उठा। उपन्यासकार ने तिलिस्म को हटाकर उसे आधुनिक रूप ही नहीं दिया है बल्कि कथा में विभिन्न मोड़ों से जो रोचकता ला दी है—उसने मुझे और भी प्रभावित किया। वैसे तो डॉ0 मृदुला शुक्ला का उपन्यास 'हिरनी-बिरनी' भी बहुत प्रभाव छोड़ने वाला है और उससे बेहद प्रभावित भी हुई हूँ—कारण कि स्त्री-विमर्श की दृष्टि से भी मृदुला जी का यह उपन्यास बहुत प्रभावी बन सका है। इस उपन्यास को मैं जैनेन्द्र जी के उपन्यास त्यागपत्र और कृष्णा सोवती के लघु उपन्यास मित्रों मरजानी की कोटि में रखती हूँ। लेकिन इन तमाम बातों के बावजूद चन्द्रप्रकाश जगप्रिय के उपन्यास के कथानक में जो रोचकता है, जो औत्सुक्य है और इसमें पाठकों को बहा ले जाने की जो क्षमता है, वह तो अद्‌भूत है। इसी से यह मेरा बेहद पसंदीदा उपन्यास भी है।'' इसके पहले एक और प्रश्न के उत्तर में तुम लिखती हो, ''मेरी पसंद की पुस्तकें तो कई हैं जिनमें प्रेमचन्द्र का 'निर्मला' भी है, जैनेन्द्र का उपन्यास 'त्यागपत्र' भी है और अभी हाल में प्रकाशित डॉ0 मृदुला शुक्ला का उपन्यास 'हिरनी-बिरनी' भी शामिल है। लेकिन जो मेरी पसंद की सर्वाधिक प्रिय पुस्तक है वह है फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास

''मैला आँचल''। मैला आँचल को मैं क्यों पसंद करती हूँ इसके कई कारण है—पहला कारण तो यहीं है कि यह उत्तर अंग महाजनपद के जीवन का महाकाव्य है। ऐसा नहीं है कि सिर्फ रेणुजी ने ही उत्तर अंग महाजनपद के जीवन को औपन्यासिक रूप दिया है। यह काम तो कई महत्वपूर्ण लेखकों ने किया है जिनमें डॉ. मधुकर गंगाधर, कमला प्रसाद बेखबर बहुत जाने माने नाम हैं । रामधारी सिंह दिवाकर के कथा साहित्य में भी उत्तर अंग प्रदेश का सामाजि-आर्थिक जीवन चित्रित हुआ है। यहां तक कि अभी हाल में ही कथाकार रंजन ने जो अपना उपन्यास 'कुंवर नटुआ दयालु' लिखा है उसमें भी उत्तर अंग क्षेत्र के धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र का ही उल्लेख है, लेकिन रेणु ने उत्तरी अंग क्षेत्र को एक छोट-से गाँव के सहारे जो विशाल और भव्य रूप प्रदान किया है, वह मुझे किसी भी उपन्यास में नहीं मिला। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि रेणुजी, अपने ''मैला आंचल'' में सब कुछ समेट कर चले हैं—फूल, शूल, चंदन, कीचड़, भला-बुरा। यानि रेणु ने किसी को भी नहीं छोड़ा इसी कारण इनका मैला आंचल औपन्यासिक महाकाव्य का रूप धारण कर गया है। रंजन जी का उपन्यास नटुआ दयाल वृहदकाय तो है लेकिन मैला आंचल की तरह इसमें बांधने की वह क्षमता नहीं है।

[शायद इसी कारण तुमने इसे पूरा नहीं पढ़ा, अर्पिता, तुम्हीं ने बताया था—तीस-पैंतीस पृष्ठ ही पढ़ पाई ।]

आगे तुम कहती हो, ''अंग जनपद की लोकगाथा पर आधारित होने के बावजूद रंजन जी के उपन्यास में अंगिका भाषा की सुगंध नहीं है—जिसके लिए यहाँ काफी गुंजाइश थी। इसकी जगह रेणु ने अपने मैला आंचल में न केवल अंगक्षेत्र की भाषा अंगिका का खड़ी बोलीकरण करके यहां प्रस्तुत किया है बल्कि अंगिका में प्रचलित लोकगीतों को हूबहू रखके उपन्यास की रोचकता और लालित्य को बहुत बढ़ा दिया है। गाँव के पात्र शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग नहीं करते; वे अंगिका को खड़ी बोली का रूप देते हैं इससे पूरा उत्तर अंगजनपद खासकर पूर्णियाँ का क्षेत्र

जीवंत हो उठा है। मैं तो अब रेणु के आंचल की ही हो गई हूँ। मैं जब भी कभी घर से बाहर किसी गाँव में निकलती हूँ, तो रेणुजी के उपन्यास 'मैला आंचल' की एक-एक पंक्ति एक-एक दृश्य मेरी आँखों के सामने साकार हो उठता है। आज मैं सोचती हूँ कि रेणुजी पूर्णियाँ के जीवन से कितने निकटतम रहे होंगे, तभी तो वह ऐसा जीवंत चित्रण कर पाए।''

[पढ़ने के लिए तो मैंने भी इन उपन्यासों को पढ़ लिया है और कहूं—इनको पढ़ने के बाद ही मैंने कुँअर विजयमल पर यह उपन्यास लिखने की बात सोच ली थी लेकिन जिसने एक कहानी न लिखी हो, वह उपन्यास क्या लिख पायेगी ? मुझे तुम पर गुस्सा ही आ रहा है कि तुमने यह काम क्यों नहीं किया । तुम्हारी ससुराल भी तो रेणु के गाँव के आसपास ही है। क्यों नहीं छाना वहाँ के भूगोल और संस्कृति को। यह नहीं कि तुम्हें विभिन्न स्थलों का ज्ञान नहीं। मुझे मालूम है तुमने अपने देश का भ्रमण भी किया है।

[खैर, तुमने अपने उपन्यासों की प्रेरणा के बारे में कहा है ''उपन्यास-लेखन की प्रेरणा मुझे माँ से मिली। यह नहीं कि माँ ने मुझे लिखने के लिए कहा, मेरा कहने का मतलब यह है कि मेरी माँ ने अपने जीवन में जितना दुःख झेला है। जितने संघर्ष का सामना किया है और कठिनाइयों के बीच परिवार को संभाला है, तो मुझे लगा कि माँ का जीवन एक सम्पूर्ण उपन्यास ही है। जिसे लेखनबद्ध कर देना चाहिए, और इसे वर्षो मैं अपने दिमाग में घुमाती रहीं। मेरा उपन्यास 'अन्तहीन वैतरिणी' माँ के जीवन और व्यक्तित्व पर ही लिखा गया उपन्यास हैं। यह अलग बात है कि इसके पूर्व मेरा एक लघु उपन्यास 'परबतिया' प्रकाशन में आ गया था। यह वह समय था जब हमारा समाज पहली बार वर्ण-संघर्ष की विभीषिका से जूझ रहा था। तो, अपनी बातों को रखने के लिए मैंने 'परबतिया' का सृजन किया, जिसमें वर्ण-संघर्ष के विरोध में मेरे पात्र सामने आये, हालांकि 'परबतिया' उपन्यास एक प्रयास भर था, अच्छा

हुआ कि 'अन्तहीन वैतरिणी' के पूर्व यह लघु उपन्यास सामने आ गया था और मैं उपन्यास-लेखन में अपनी कमजोरियों को इससे समझ गई थी। तो, मैं फिर आपसे कह रही हूं कि उपन्यास लिखने की प्रेरणा मुझे कहीं से नहीं मिली; यह प्रेरणा मुझे माँ के व्यक्तित्व और संघर्ष से मिली है।

[और जब डॉ. हरगानवी तुमसे पूछते हैं कि अपने उपन्यास के बारे में विस्तार से बताऐं? तो तुम कहती हो, ''अभी-अभी मैंने आपको बताया है कि 'परबतिया' मेरा पहला लघु उपन्यास है, भले ही उपन्यास-कला की दृष्टि में यह उपन्यास सफल नहीं कहा जाएगा, कारण यह है कि उस समय मैंने रेणु के 'मैला आंचल' को पढ़ लिया था और उस उपन्यास में लोकगीतों के प्रयोग ने मुझे बहुत प्रभावित किया। एक तरह से ऐसे प्रयोग के प्रति मुझमें मोह उत्पन्न हो गया था, ठीक इसी समय की बात है अमरेन्द्र जी का लिखा एक लघु प्रबन्ध काव्य बहुत लोकप्रिय हो रहा था। ऑस्ट्रेलिया से आए एक शोधार्थी (जिनका नाम संभवतः राज था) के आग्रह पर अमरेन्द्र जी ने अपने उस प्रबन्ध काव्य को मेरे ही घर पर राज जी को सुनाया था। यूं कहिए कि राजजी ने उस काव्य की रिकॉडिंग की थी। मुझे भी उस गीत ने बेहद प्रभावित किया था और जब परबतिया का लेखन मैंने शुरू किया, तो उस गीत को एक प्रसंग के सहारे पूरा-का-पूरा उपन्यास में रख दिया। जिसके कारण उस लघु उपन्यास का शिल्प ही ढीला पड़ गया। बाद में कई पाठकों ने कहा कि अगर उस प्रबन्ध को देना ही था, तो एक अंश ही काफी था—सम्पूर्ण काव्य को रखने की कोई जरूरत नहीं थी। न केवल दूसरे लोगों ने बल्कि अमरेन्द्र जी ने भी यहीं कहा था कि काव्य को इस तरह रख देने से उपन्यास का ढांचा उखड़ गया। लेकिन मुझे तब उसकी कोई चिन्ता नहीं थी, इसलिए कि मुझे जो विचार उस उपन्यास के माध्यम से रखना था, उसे मैंने रख दिया था । मतलब कि एक स्वस्थ समाज के लिए वर्ण-संघर्ष कभी भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता।

और जैसा कि मैंने आपको अपने दूसरे उपन्यास के संबंध में

बताया कि 'अन्तहीन वैतरिणी' मेरी माँ के संघर्ष और उनकी उपलब्धियों को लेकर लिखा गया उपन्यास है। मुझे मेरी माँ के संघर्ष ने काफी प्रभावित किया है; यहीं कारण है कि जब मैंने अंगिका में ही अपने तीसरे उपन्यास 'गुलबिया' का सृजन आरंभ किया, तब उसके चरित्र को मजबूती देने के लिए मैं निरंतर सजग रही। गुलबिया गाँव की एक मजदूरिन है; गठीले बदन की युवती है, जिसका लगाव गाँव के ही एक मजदूर बालेश्वर से है। लेकिन गाँव के समाज और सामन्त को यह लगाव पसंद नहीं। परिणाम यह होता है कि गुलबिया की इच्छा के विरूद्ध उसका विवाह किसी अन्य गाँव के अन्य युवक से हो जाता हैं। आरंभ में अलगाव की स्थिति दिखती है, लेकिन कुछ सोचकर गुलबिया ससुरालवालों के साथ हो जाती है। वह जब गर्भवती होती है तब सास-ससुर, पति बिल्कुल निश्चिंत हो जाते हैं कि अब दुराव-अलगाव की स्थिति कहीं नहीं है। गुलबिया पुत्र को जन्म देती है और एक दिन अपने पति और पुत्र के साथ गाँव के मंदिर में पहुंचती है। वहीं वह पुत्र पति की गोद में डालकर किसी बहाने से बाहर निकलती है और फिर भाग निकलती है, बालेश्वर के गाँव—जहाँ बालेश्वर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे अपने तीनों उपन्यासों में 'गुलबिया' बहुत प्रिय है हालांकि नैतिक दृष्टि से इस उपन्यास को समाज कभी नहीं स्वीकारेगा, मैं यह जानती हूं। लेकिन इसके बावजूद यह उपन्यास मुझे प्रभावित करता है।

[अर्पिता, तुम्हारे इस लंबे कथन को इसलिए यहाँ रख रही हूँ कि आगे तुमने जो बात कही है, उसने मुझे सोचने के लिए बहुत बाध्य किया है। तुम उत्तर के क्रम में जो कहती है, उसे भी पढ़ लो ।]

एक उपन्यास और लिख रही हूँ। यह हिन्दी में है जो अंगिका की लोकगाथा 'कुंवर विजयमल' पर आधारित हैं। यह उपन्यास अभी अधूरा-अधूरा-सा है और फिर यह मेरे पूर्ववर्त्ती अंगिका उपन्यासों की तरह भी नहीं, जिसमें कथा-वस्तु की प्रधानता है। इसमें तो एक लड़की

है, जो लेखिका की सहेली है और लोकगाथा की तलाश में निकली है। इस उपन्यास में लोकगाथा की कथा से अधिक उस लड़की का चरित्र ही ज्यादा खिला हुआ मिलेगा।'

[पहले 'परबतिया' के बहाने कुछ उपन्यास पर मैं भी कह दूँ । ठीक ही तो डॉ. साहब ने कहा । तुमने जगप्रिय जी का उपन्यास 'ठूँठ पर चाँद' भी दिया है । उस उपन्यास का एक अंश हू-ब-हू रख रही हूँ। देखो यहाँ कथा भी है, गीत भी है, लेकिन सब उपन्यास की कथा से बाहर नहीं होते । प्रस्तुत है वह अंश :
"कोशी बहुत रूपवती थी।" प्रेमा ने हल्की मुस्कान के साथ कहा था।

"हाँ, जैसा कि कोशी के तीर-तीरे में उसका उल्लेख है, कि रानु ने जाकर, कोशी से ब्याह की इच्छा रखी, तो कोशी ने भी एक शर्त रख दी कि अगर वह उसकी धार को रात भर में ही बाँधों से बाँध ले, तो उसे उसके साथ ब्याह करने में कोई हिचक नहीं होगी। राक्षस रानु को अपनी शक्ति पर भरोसा था, तो शर्त्त के मुताबिक भोर होने से पहले बाँधों को बाँध ाने में लग गया, लेकिन देवता ने सहयोग किया और इन्द्र ने आधी रात के बाद ही मुर्गे की आवाज कर दी। रानु ने समझा , वह तो शर्त हार गया है, इसीसे उसने बाँध बाँधने का काम रोक दिया, इसी कथा को आपने लिया है लेकिन मुझे जो कहानी मिली है, उसमें बहुत भिन्नता है।"

"वह क्या?" मयंक ने जिज्ञासा प्रकट की।

"वह यह है कि कोशी ही रानु से बेहद चाहती थी लेकिन देखिए कि रानु की शादी किसी और रूपवती से हो गई, जिससे कोशी का क्रोध जाग गया और जब क्रोध जागा, तो उसका परिणाम बुरा होना ही था। रानु जब शादी कर लौटा और सुहाग रात में गहरी नींद में सोया हुआ था, तो उसे कोशी के गरजने की आवाज सुनाई पड़ी। भोर में जब वह जागा, और स्नान करने को कोशी की ओर जाने लगा, ता उसकी माँ

ने उसे रोका, पर वह रुकनेवाला कहाँ था। कोशी तो एकदम उफान पर। वह जैसे ही उसकी धार में उतरा और पहली, दूसरी और तीसरी डुबकी लगाई कि तीसरी डुबकी में ही उसे कोशी अपनी धार में बहाने लगी और बहाती ही रही। किसी तरह वह बच पाया, तो उसने यह निर्णय लिया कि वह कोशी की धार को मोड़ देगा। वह घर लौटा और अस्सी मन की अपनी कुदाल को उठाया, उस कुदाल को जिसमें बेरासी मन का बेंट ही लगा हुआ था। उसी कुदाल से उसने कोशी को खोदना शुरू किया। रानु खोदता चला गया और कोशी उसके पीछे हाँफती भागती गई। रानु का गुस्सा खत्म नहीं हुआ है और वह उसके पीछे अब भी हाँफती भागी जा रही है।" यह कहते-कहते जूही अचानक ही चुप हो गई, जैसे उसका कंठ रुध गया हो। प्रेमा ने उस स्थिति को गहराई से समझा था, तो माहौल को हल्का करने के खयाल से पूछा था, "क्या इससे जुड़ा वह गीत भी मिला है?"

"हाँ, मिल गया हैं, उसे भी खोज निकाला है, तियर टोले की एक औरत से मिला है।"

"तो पहले उसे ही सुनाओ, बाद में और सब बातें।" मयंक ने कहा था।

जूही ने अपना बैग खोलकर डायरी निकाली थी और कई पन्ने उलटने के बाद रुकी थी, फिर पढ़ना शुरू किया था,

रातिये जे ऐलै रानु गौना कराय कें
कोहबर घर में सुतलों निचिन्त
जेकरों दुअरिया हे रानु कोशी बहै धार।
सेहो केना सुतै छै निचिन्त।
सिरहां बैठल हे रानु कोशिका जगावै हे
सुतल रानु उठलै चिहाय
की हे तिरिया केसन सनेशवा
कहों तोहें हमरा सुझाय।

काँख लेलें धोतिया आ मुँह में दतुन कें
चली भेलै कोशी असनान
माय तोरा बरजौ रे रानु
बरजो नै मानै रानु, डाँटवो नै मानै
चली भेलै कोशी असनान
एक डुब लेलें हे रानु
दूई डुब लेलें
तेसर डुब गेलै भसियाय
जब तोहें कोशिका हमरा डुबैबौ
आनवौं हम्में अस्सी मन कोदार
अस्सी मन कोदरिया हे हे रानु
बेरासी मन बेंट
आगु-आगु धँसना धसाय।

जूही अपनी डायरी को बंद कर मौन हो गई थी ।

[कितने सुंदर-ढंग से कथा और गीत को गूंथ दिया है । यही तो कला है । और आखिर में एक बात और । अर्पिता, अब तुम सच-सच बताना कि वह लड़की मैं ही हूँ, या कोई और ? क्या तुमने इस चौथे उपन्यास को आकार देने के ख्याल से ही, विजयमल पर उपन्यास लिख मारने की बात मुझसे किया करती थी ? मैं अपनी अयोग्यता दिखाती, तो तुम कहती—शुरू तो करो, रास्ता सामने मिलेगा । और मैं तुम्हारे बहकावे में आकर यहाँ घर पहुँचने पर शुरू हो गई थी। अर्पिता, क्या तुम भी विजयमल पर उपन्यास लिख रही हो ? हाँ, तो तुरत लिख भेजो । सोचूंगी—मेरा शोध पूरा हो गया ।

[खैर, अब तुम्हीं सोचो अर्पिता, उपन्यास के बारे में। जब तुम्हें इतनी सारी बातों का ज्ञान है, तो कुँअर विजयमल को क्यों नहीं अब तक एक उपन्यास का पात्र बनाया। बनाती, तो तुम भी तिलकी की

तरह अमर हो जाती। क्या समझी—अभी भी समय है। अब मुझे लग रहा है मेरा यह उपन्यास उपन्यास है भी नहीं तुम्हें यह बताने के लिए है कि तुममें अपार क्षमता है—कुँअर विजयमल को एक सुंदर उपन्यास देने की क्षमता और अगर तुमने लिखना शुरू कर दिया तो तुम अपनी दो बातें याद रखना जो तुमसे पूछे गये प्रश्नों के उत्तर हैं। मैं दोनों उत्तरों को हू-ब-हू रख रही हूं। पहला उत्तर रंग से जुड़ा हुआ है । तुम कहती हो ''बचपन से ही मुझे न जाने क्यों गुलाबी रंग आकर्षित करता रहा है और आजतक अगर कोई रंग बेहद मुझे अपनी ओर खींचता है तो वह गुलाबी रंग ही। चाहे वह मेरे बदन पर मेरी पोशाक हो या मेरे घर की दीवारों पर चढ़ा हुआ रंग। मैंने अपने कमरे की दीवार को गुलाबी रंग से ही रंगवाया है। बहुत शान्ति मिलती है इस रंग में। दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक इस रंग का क्या अर्थ निकालेंगे या निकालते है, मुझे नहीं मालूम। मुझे तो सिर्फ इतना ज्ञात है कि यह रंग मुझे बेहद शान्ति देता है। लेकिन यह शान्ति विरागवाली नहीं है। यह ऐसी शान्ति है जो जीवन को आनन्द और पुलक से भर देती है। मैं सोचती हूँ कि कितना अच्छा होता अगर पूरी दुनिया का रंग ही यही होता। आखिर वो कैसे शासक थे, कैसे थे वो लोग जिसने राजस्थान के एक शहर को ही गुलाबी शहर बना दिया।'' और फिर तुम्हारा दूसरा उत्तर तुम्हारे पात्र प्रेम से जुड़ा है ''इसका उत्तर तो पूर्व प्रश्न के उत्तर से ही निकलता है; फिर भी मैं उसमें कुछ और जोड़ना चाहूंगी। स्त्री होने के नाते मुझे उन लोगों से बहुत नफरत है जो स्त्री का अर्थ यह समझते हैं कि वह पुरूषों की गुलामी करने के लिए है। पुरूषों के हाँ-में-हाँ करने के लिए है और ना-में-ना। और जो अगर इसमें चूक हो गयी, तो सिर्फ पुरूषों के क्रोध को बर्दाश्त करने के लिए। अपवाद के उदाहरण अलग हो सकते हैं लेकिन देखा जाय, तो आदिकाल से आधुनिककाल तक स्त्रियों की यहीं सामाजिक स्थिति है। मैं यह नहीं कहूंगी कि इस स्थिति को बनाए रखने में स्त्रियों का हाथ नहीं है। लेकिन स्त्रियों से कहीं ज्यादा बड़ा हाथ पुरूषों का है। भले ही स्त्रियों को बाहर में उतना अपमान न झेलना पड़े

लेकिन घर में तो बहुत झेलना पड़ता है। हर दो कदम पर पति या जेठ की दो कड़वी बातें स्त्री को सहना ही सहना है। मैं भी वचन की इस हिंसा से घायल हुई हूँ। सहने के लिए सह गई हूँ लेकिन सच कहती भी कि अपने वचन से भी हिंसा करनेवाले व्यक्ति को मैं भीतरी मन से नापसंद करती हूँ।''

तो, तुम अपनी इस पसंद के अनुकूल ही विजयमल के पात्रों को गढ़ो। और तुमने कहा है न कि ''बस इतना समझिए कि मैं उस संगीत को पसंद नहीं करती जो अवसाद, दुःख या करूणा बाँटता हो। वैसे भी मेरे जीवन में अवसाद और दुःख क्या कम है, जो शोक संगीत को सुनकर दुखित होती रहूँ। दिन में दस बार ऐसे अवसर आते है जब किसी-न-किसी बात को लेकर मन आहत होता रहा है—घर से लेकर कॉलेज तक। कभी माँ की बातों से, तो कभी पति की बातों से और न तो फिर सहयोगियों या छात्राओं की ही बातों से मन भारी-भारी-सा रहता है। ऐसे में तो कोई मधुर संगीत ही सुनने को जी चाहता है। मधुर संगीत से मेरा मतलब उस संगीत से भी है—जो—शोरगुल और संगीत के कोलाहल से मुक्त हो।'' तो तुम इस नये उपन्यास को सिर्फ विजयमल या तिलकी के आँसुओं से ही डुबा कर मत रखना। उपन्यास तो वही अच्छा, जो सब रंगों से रंगा गया हो। सिर्फ गुलाबी रंग में ही नहीं, नीले, पीले, सफेद—यहाँ तक कि श्याम रंग में भी मैनावती को रंगना । मेरी किसी बात का बुरा नहीं मानना। तरंग में बहुत कुछ लिख जाती हूँ लिख गई हूँ ।

■■